Date :

Chapter-5

==

: पंचम् अध्याय :

: नगरीय पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों की भाषा :

==

:: पंचम अध्याय ::

: नगरीय पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यासों की भाषा :

प्रास्ताविक :

यह अनेक बार कहा गया है कि उपन्यास के पात्रों की भाषा "लोगों" की भाषा होती है । वह जीवन्त भाषा होती है । अतः लेखक जिस परिवेश को उठाता है, भाषा का स्तर भी उसी के अनुरूप होगा । जब हम मटियानीजी के उपन्यासों पर दृष्टिपात करते हैं, तो उनके उपन्यासों में दो प्रकार के परिवेश मिलते है — ग्रामीण और नगरीय । ग्रामीण परिवेश में उन्होंने कुमाऊं प्रदेश के गांवों को लिया है और उनकी कथा-व्यथा, सुख-दुःखों को उनकी भाषा में निरूपित किया है । ऐसे उपन्यासों में

"हौलदार" , " एक मूठ सरसों " , "चौथी मुट्ठी " , "प्रेम मुख-सरोवर के हंस " , "चिट्ठीरसैन " , " नागवल्लरी" आदि को लिया जा सकता है । दूसरी ओर उनके कुछ नगरीय पृष्ठभूमि पर आधारित उपन्यास हैं , जिनमें "बोरीवली से बोरीबन्दर तक" , "किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई" , " कबूतर खाना" , "गोपुली गफूरन" , "चन्द औरतों का शहर" , "छोटे छोटे पक्षी ", "आकाश कितना अनंत है " , " जलतरंग" , "बर्फ गिर चुकने के बाद " आदि की गणना कर सकते हैं । इस नगरीय परिवेश वाले उपन्यासों में भी मुख्यरूप से हमें दो प्रकार के परिवेश मिलते हैं -- बम्बइया परिवेश और अन्य नगरीय परिवेश । अन्य नगरों में दिल्ली , इलाहाबाद, अल्मोड़ा आदि नगरों की कथा ज्यादातर रही है । ऊपर जिन उपन्यासों का उल्लेख किया गया है उनमें प्रारंभ के तीन तो बम्बइया परिवेश वाले उपन्यास हैं , और शेष उपन्यासों में दूसरे नगर आए हैं । अतः प्रस्तुत अध्याय में हम इन दोनों पृष्ठभूमि वाले उपन्यासों की भाषा पर विचार करेंगे ।

(अ) बम्बइया परिवेश से युक्त उपन्यासों की भाषा :

अब यहां मुंबई के परिवेश को लेकर लिखे गए उपन्यासों की पडताल भाषा के संदर्भ में करने का हमारा उपक्रम है । सर्वप्रथम हम मटियानीजी का प्रथम उपन्यास -- " बोरीवली से बोरीबन्दर" तक लेते हैं । यह उपन्यास सर्वप्रथम सन् 1959 में आत्माराम एण्ड सन्स से प्रकाशित हुआ था । उसका दूसरा संस्करण सन् 1985 में , अनामिका प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ ।

(1) बोरीवली से बोरीबन्दर तक :

यह उपन्यास प्रकाशित होते ही बहुत चर्चित हुआ था । प्रत्येक पाठक के बौद्धिक धरातल को झकझोर देनेवाला यह

उपन्यास बम्बई के उन लोगों के जीवन पर आधारित है जो जघन्य, घृणित, गर्हित, उपेक्षित और तिल-तिल अपमानित है। उपन्यास में मुंबई महानगरी के बोरीवली से बोरीबन्दर तक की ट्रेन-यात्रा के माध्यम से एक ऐसी जीवन-जीवन्त सृष्टि को लेखक सामने लाते हैं जिनमें गुण्डे, मवाली, लुच्चे, बदमाश, जेबकतरें, भिखारी, कोढ़ी लोग कीड़े-मकोड़ों की जिन्दगी जी रहे हैं। इस प्रकार की जिन्दगी को बहुत बाद में जगदम्बाप्रसाद दीक्षित के उपन्यास "मुर्दाघर" में उकेरा गया था। परन्तु वह साठोत्तर उपन्यास है। इस ज़िन्दगी का दस्तावेज़ प्रथम बार पाठकों के सम्मुख लाने का श्रेय मटियानीजी को जाता है। किस प्रकार कुछ बहुरूपिये पहाड़ की विहंग बालाओं को सब्जबाग दिखाते हुए दिल्ली, बम्बई, कलकत्ता, बनारस जैसे शहरों में सप्लाई करके उन्हें वेश्या-जीवन व्यतीत करने पर मजबूर करते हैं और घर के बदले उन्हें कोठा मिलता है, उसकी कथा को यह उपन्यास बड़े मार्मिक ढंग से रखता है। चांदनी और नूर पहाड़ों से उठायी गयीं थीं। चांदनी तो कोठों के चक्रव्यूह को भेदकर किसी तरह अभिनेत्री बन जाती है, पर नूर बम्बई के एक कुख्यात दादा के हाथों पड़ जाती है। दादा नूर ~~xx~~ के पिता की उम्र का था और नूर को अपनी रखैल बनाकर रखता है। वैसे वह नूर को जी-जान से चाहता है। ग्राहक-दर-ग्राहक अपने शरीर को चुंथवाने से दादा के घर किसी एक की होकर रहना नूर को भी अच्छा लगने लगता है। तभी कथा-नायक वीरेन्द्र से नूर की मुलाकात होती है। वीरेन्द्र भी पहाड़ों से आया है। नूर का हमवतन और हमखयाल है। अतः उन दोनों में प्रेम हो जाता है। दादा पहले तो आगबबूला हो जाता है, परन्तु बाद में उसके भीतर का इन्सान जाग उठता है और वह दोनों को आशीर्वाद देता है।

उपन्यास की भाषा बम्बइया-भाषा है। ~~xxxxxx~~ में बम्बई में भारत के सभी प्रान्त के लोग आकर बस गए हैं, अतः

उनकी भाषा भी एक तरह की खिचड़ी भाषा है । यहां प्रस्तुत उपन्यास से कुछेक उदाहरणों के द्वारा इसे स्पष्ट करने का हमारा उपक्रम है । यथा —

" आपणी काय , साहिब ?

साहिब कहते हो तुम ? वीरेन ध्यान के टूटते ही , टूटे स्वर में बोला — " इतना तो समझा , क्योंकि होटलों के छोकरे हर किसी ग्राहक को सा`ब कहते हैं , चाहे वह दरिद्र ही क्यों न हो । ... बाकी तुम यह "आपणी " — "पाहिजे" – "काय" क्या कहते हो , मुझे ....

क्या करेंगा , साहिब , छोकरा हंसकर बोला — " हम तो मद्रासी है , पर इदर ज्यास्ती ग्राहीक मराठी आता ; हम ज्यास्ती करके मराठी में ही "आर्डर" लेता-देता ।

...: काय पाहिजे " का मतलब " आपको क्या होना होता , साहिब " , छोकरे ने उत्तर दिया — " और "आपणी काय" का मतलब " और आपको क्या होना ? "

तभी पीछे से " ओ आर्डरवाला , ओ आर्डरवाला " की आवाज़ आई । " आया साहिब । काय पाहिजे ? मिसल ? एक प्लेट मिसल । एक चा ? "

... वीरेन के पायजामे पर भजिया की बची हुई चटनी गिर गई । " काय रे डोले , असल्यातरी अंधाला-सा रखा चालतो , का ? ... "माफ करना , साहिब । जारे , पांडुरंग आता माझा फटका घेउन दे । "

जब वीरेन ने उसका अर्थ पूछा तो मद्रासी ने बताया — " जो हम बोला मराठी , इसका मतलब " आंख का रह भी अंधा सरीखा चलता क्या ? " " (1)

वीरेन जब उससे कहता है कि तुम मुझे "साहिब" , "साहिब" कहते हो , क्या मैं तुम्हें "साहिब" लगता हूं ? यह फटा पायजामा , यह गाढ़े का कुर्ता ? इस पर वह मद्रासी छोकरा कहता है —

" "आदमी का कपड़ा केवल "आउट-फिटिंग " होता , उसका "रियल परसनैलिटी " उसका चेहरा होता । " हम तुमेरे चेहरे को "रीड" किया , आप बड़ा खानदान का आदमी होना मांगता । " [2]

इस पर वीरेन जब पूछता है — " तुम शायद "इंग्लिश" बोलना जानते हो ? " तो उसके जवाब में वह मद्रासी कहता है — " " हमारा नाम , रामस्वामी । " ... येस , ब्रदर , आई कैन टाक इन इंग्लिश वेरी वेल । हमारे फादर का नाम मुत्तूस्वामी । बट तुम अमेरे से हिंदी में बात करना । हम एक-दो महीना बखद का बाद हिंदी का परीक्षा में बैठने को मांगता । हम हिंदी का आजकल अद्देअमx अद्रेअन ... क्या कहता , उसको ? "स्टडी" को हिंदी में क्या होता ? ...." [3]

इससे स्पष्ट होता है कि बम्बई में जो हिन्दी बोली जाती है उसमें कहीं-कहीं मराठी शब्द होते हैं , या वह हिन्दी "मराठी-टच " की हिन्दी होती है , जैसे "चाहिए" के लिए "होना" का प्रयोग । इसी तरह हूं "चाहता हूं " के लिए "मांगता" का प्रयोग । जैसे — " मैं यह करना चाहता हूं " के लिए " मैं यह करना मांगता । " उसी तरह "होता है" के लिए केवल " होता" । कारक प्रत्ययों में "की" के स्थान पर "का" का प्रयोग , जैसे "हिन्दी की परीक्षा" के बदले "हिंदी का परीक्षा" । तो कहीं -कहीं मराठी मिश्रित हिंदी , जैसे तुमको क्या पाहिजे ? । "हमसे " के स्थान पर "अमेरे से" तथा "तुमको" के स्थान पर "तमेरे को " जैसे व्याकरणिक दृष्टि से अशुद्ध प्रयोग मिलते हैं ।

किन्तु ध्यान रहे यह पात्रों की भाषा है । लेखक उसका अनुकरण सका है क्योंकि वह इन पात्रों के बीच रहा है । उनका उसे प्रत्यक्ष (फर्स्ट हैण्ड) परिचय है । आंग्ल आलोचक हैनरी जेइम्स की जो उपन्यास-विषयक परिभाषा है उसमें भी इसी तथ्य की ओर संकेत है — " ए नावेल इज़ इन इट्स ब्रोडेस्ट डेफिनिशन ए परशनल , ए डायरेक्ट इम्प्रेशन आफ लाईफ . "[4] अपने पात्रों और परिवेश के प्रत्यक्ष अनुभव के बिना यह असंभव है । लेकिन उपन्यासकार अपने विवरणों और विश्लेषणों में लेखकीय भाषा का प्रयोग करता है । आलोच्य उपन्यास से एक उदाहरण प्रस्तुत है —

" एक कुली हाथ-गाड़ी पर बोझ लिए हुए गुजरा , कुछ मस्ती में था , हर कदम नपा-तुला पड़ रहा था । वीरेन ने सोचा— इसका वर्तमान तो ठीक है , निश्चित है , भविष्य कुछ भी हो । मेरा वर्तमान एक अनखिंची लकीर , एक धुंधले "निगेटिव"×क्रेओ फोटो-सा है । भविष्य का चित्र इस "निगेटिव" से स्पष्ट-स्वच्छ हो सकेगा — किसे मालूम । काश , कि जरा-सा आभास ही होता भविष्य का ।"[5]

किन्तु यह जो लेखकीय भाषा है , प्रशिष्ट भाषा , उसमें भी कहीं-कहीं कुमाऊं की मिट्टी महक उठती है । यथा — "याद आते हैं अमन-चमन के कुछ ऐसे ही क्षण , मन को कुरेद जाता है अल्हड़ता का कुछ ऐसा ही धूल-सना इतिहास । ... यह मिट्टी भी कैसी मां है । इसकी गोद में , गोद में पड़ी हरे शाल-सी दूब-घास में सब कहीं , हर किसीके बच्चे यों ही जाने-अजाने खेल खेलते रहते हैं , मुट्ठी — चार मुट्ठी मिट्टी में अमन-चैन के ये राजप्रसाद, सारे कलुष , सारी कुण्ठा , समस्त दुःखों से परे । ... कभी वीरेन ने भी तो अमन-चैन के ये राजप्रसाद बनाए होंगे । बनाए थे , कुमौली के उस पंडित के साथ , जो सवाई माधोपुर में बिछुड़ गया ; सरू के साथ , बसंत पंचमी को जिसके लिए साटन का पिछौड़ा लाया , तो दो बूंद आंसुओं से भिगोकर पानतोली के तालाब में पत्थर बांधकर

डुबा दिया ; गौरी भैंस के साथ , जिसे कंटीली झाड़ियों से घास निकाल-निकालकर खिलाया , पर दूध देने के दिन आए , तो धनधार के भ्योल (चट्टान) से गिरकर दम तोड़ गई ; बुरूंश के फूलों के साथ , जो जेठ आते ही कुम्हला गए ; लाली-बाली बकरियों के साथ , जिन्हें बूचड़ खरीद ले गया ; और अबोले भाई , अनब्याही बहन के साथ , जो लाड़-प्यार के दिनों में ही इतनी दूर चले गए , इतनी दूर चले गए , कि जैसे यहीं आकर ये सारे घरौंदे —×मुट×मुट्ठी-चार मुट्ठी के राजप्रासाद उजड़ गए , वीरान हो गए हैं , कि जैसे जीवन की सारी उमंगें लुट गई हैं , कि जैसे — कुछ ऐसा कि जैसे कुछ भी नहीं रह गया है ..." 6

जैसे निर्मल वर्मा के लिए कहा जाता है कि उनका कवि उनके गद्य में श्रुतिगोचर होता है , ठीक यही बात हम मटियानीजी के संदर्भ में भी कह सकते हैं । "अल्हड़ता का धूल-सना इतिहास" , "अमन-चैन के राप्रासाद" , "चार मुट्ठी मिट्टी के राजप्रासाद" , बुरूंश के फूलों का कुम्हला जाना " , " पिछोड़े में दो बूंद आँसूओं से भिगोकर पानतोली के तालाब में पत्थर बांधकर डुबो देना " जैसे रूपक और बिम्ब उनकी काव्यात्मक गद्य-शैली का परिचय कराती हैं । "चार मुट्ठी मिट्टी" , " साटन का पिछौड़ा" , "पानतोली का तालाब" , "गौरी भैंस " , "धनधार भ्योल" , " बुरूंश के फूल " , लाली-बाली बकरियां " जैसे शब्द-प्रयोगों से बड़े ही सांकेतिक ढंग से कुछ ही लकीरों में कुमाऊं की यादों की जुगाली को प्रस्तुत किया है । ऐसा लगता है कि कुछ शब्दों से लेखक को "ओब्शेसन" है । ऐसे शब्दों में "चार मुट्ठी मिट्टी" तथा "बुरूंश के फूल" हैं । मटियानीजी कोई रचना हो , कहानी या उपन्यास , और उसमें कहीं "बुरूंश के फूं× फूल न मिले " ऐसा हो नहीं सकता । इसी तरह "कसाई" के लिए "बूचड़" शब्द का प्रयोग भी मटियानीजी में मिलता है ।

इसी उपन्यास में एक भैयाजी का पात्र है । बम्बई में उत्तर-भारतीय लोगों को प्रायः "भैया" कहा जाता है । इसी भैयाजी की जेब दादा ने काटी थी । देखिए उसीकी भाषा का एक उदाहरण — "का कही साहब । अचरज का बात हुई गया । हम साला सोचा रहा , कमर से कोई निमकहराम , बस चोट्टा साला बलेड मारकर खिसका लेई , पर ससुरा हमारे मुंह को उल्लू बनाके चल दिया । साला अधरम है , साहब । प्लेटफार्म पर , साला इतना-इतना लोग सुवा रहा , सब साला जोरू का खसम , कोई बोला नहीं कि भैयाजी तोहार लुटिया लुटि जात है । ... अब क्या बताएं , भाई साहब । दश-दश का दुई , पांच-पांच का दुई अऊर एक-एक का पांच — पूरा साला पैंतीस रुपया रहा । जेठ में मुलुक जाने का विचार किया रहा । पर के साल थकनिया को लिबरटी में " फुटपाथ" दिखाए रहे , तौन अबके बरस थकनिया की मां को "झनक-झनक पायल " दिखाने के सोचत रहे । हम साला विचार किया रहा — थकनिया की महतारी के लिए रेशम का घेरदार घाघरा लैके जाब ... फिर जो साहब , " वन फैव " की कुर्सी पर उसको बिठाने का विचार रहा । साहब , लिबरटी का कुर्सी भी क्या आगे-पीछे सरकता है । हम साला , सोचे रहे , जब थकनिया की महतारी घेरदार घाघरा पहन के या कुर्सी पर बैठी ... पर साला , आज हम सुआ रहा , साहब , कोई हमारी जिन्दगी को चूना लगा दिया । का करी । पिछले बरस लिए रहे , थकनिया की महतारी के लिए साड़ी ... साहब , "बूलन" साड़ी लिए रहे ... पर साला कोई जोरू का खसम , हंडे से निकालि ले गया । साला घोर अधरम है ।" [7]

तो इसी उपन्यास में फरनान्डिस डीसोजा की भाषा एक नमूना देखिए — " काहे कूं , रे दादा , खाली-पीली गरीब का ऊपर गजब करता है । कसम ईसामसी की , तुमेरा नाम कभी निकले ,

तो जबान कूं खींच लेना । क्या , हम दगाबाजी करिंगा नहीं । हां , रे दादा । हम आज सुबू-सुबू गिर्जा जाता है । सनडे है ना ? फिर क्या , आज रात को आईंगा । ... "[8] दादा उसके बारे में वीरेन को बताते हैं कि एक दिन देसाई की छोकरी कपड़ा लेने गई , तो हरामी ने जान-बूझकर उसकी चोली छुपा । छोकरी जब कहती है कि एक कपड़ा कम है , तो नालायक पूछता है -- कौन-सा ? वह बेचारी क्या जवाब दे । फिर साला खुद ही पूछता है -- " अइसा बाबा कइसे खबर पड़िंगा ? धोती , सर्ट , टावेल , सदरा ... क्या कुछ नाम बोलो ? छोकरी भी साली बदचलन , "चो... ली " कहते-कहते शरम और गुदगुदी से पीली पड़ गई ... उधर से सावित्री की मां ने उसके भाई करसन को भेज दिया , कि " सावित्री डीसोजा ना त्यां कापड़ा लेवा गई हती ; हवे घणी वार थई गई छे । जरा जोतर आवजे , करसन " करसन जब पहुंचा तो , डीसोजा उस बे-पर पंछी को आखिरी चुंबन देकर बिदा कर रहा था ... "[9]

तो स्वयं दादा की भाषा का एक उदाहरण देखिए --
" यही तो गम है नूर । ऐसा लगता है , जैसे कोई मेरे कलजे को चीर रहा है । कोई ऐसा रिश्तेदार भी नहीं , जिसे तुम्हें सौंप सकूं । मुंगरापाड़ा तो नंगों की बस्ती है । आदमी जिसम से नंगा हो , तो उतना बुरा , उतना खतरनाक नहीं होता , नूर । जितना दिल से नंगा हो जाने पर होता है । ... स्वामी , डिसोजा , दुःखहरन .. किस पर यकीन किया जा सके , ऐसा कोई नहीं । अली बख्श अब पैसे वाला हो गया है , पैसेवालों की नियत कौए की आंख होती है । किस्मत तुम्हें कहीं भी ले जाए , अपने हाथों से शैतान के मकबरे में दीया मैं कैसे जला सकता हूं ? ... "[10]

इसी उपन्यास में एक पात्र है विट्ठल । उसकी भाषा में भी हमें बम्बइया-हिन्दी का "टच" मिलता है । यथा --" हवलदार , एकच खडूस है । ... हमेरी आंखों के सामने पिछली तीन बरस से दारू

सप्लाई कर रहा है । पण चेहरे से ऐसा लगता है , जैसे मुंबई में नवीनच आया है । कहता क्या , शपथ पांडुरंगाची , हमेरे को पूछता था , इधर ठोला लोग तो नहीं घूमता है , ज़रा देख के आओ । क्या हौलदार , इसका आख्खा कुटुंब दारू सप्लाई करता है । इसका बाई भी इसका माफिक्च हुसनदार है । वो क्रिस्तान बनकर , पर्स लेके चलता है — उस पर्स में , अभी तुमेरे को क्या बोले , तीन बाटली दारू आता है । कोई पुलिसवाला हाथ फिराने को देखा , तो नज़र मिला के चालू पड़ जाती है । क्या हौलदार , हुस्न के आगे कोई कानून नहीं चलता ।" ।1

तो चरसियों और भंगेडियों की टोली की इस भाषा को देखो — " अली , जिसने न उठाई चरस की कली , उस मरद से बीबी हो भली , अरी ओ छमियां , छमाछम कहां को चली ? ... दूसरा कहता — " शिवशम्भू गिरा दे मकान , लगवा दे तम्बू , हवलदार को मार बम्बू , जमेदार को बना लम्बू ... ओ-ई-ई-ई सिद ... " तीसरा और रंग चढ़ाता — " हरी बम , लगे दम , मिटे गम ... इनसपेटर मिला पावली कम , कानी बीबी , लूला खसम ... ई-ई-ई धूला तेरे नाम का जहूरा , बाकी सब घास-कूड़ा ... साईं ठसका , चरसिया यार किसका ? दम लगाई और खिसका ...." ।2

§2§ किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई :

यह उपन्यास सर्वप्रथम सन् 1960 में आत्माराम एण्ड सन्स से प्रकाशित हुआ था । यह उपन्यास भी मुंबई की पृष्ठभूमि पर आधारित है । आर्थिक असमानता का जितना गहरा दलदल इस मुंबई शहर में है , अन्यत्र नहीं । एक तरफ मिनिटों में लाखों कमाने वाले लोग और दूसरी तरफ एक-दो चाय की प्याली या बिस्किट में शरीर का सौदा करने वाली वेश्याएं । मुंबई को भारत की आर्थिक - राजधानी कहा गया है । यहां एक दिन में हजारों-लाखों-करोड़ों का बिजनेस होता है । दूसरी

और यह फुटपाथियों , मुफलिसों , पाकिटमारों , जेबकतरों , सिनेमा के टिकिट का कालाबाजार करने वालों , दादाओं , उस्तादों , भिखारियों , कोढ़ियों ,वेश्याओं का शहर है । यहाँ दो-दो , तीन-तीन रूपयों में शरीर का सौदा करने वाली वेश्याओं से लेकर एक रात के हजारों रूपये चार्ज करनेवाली पँचतारक होटलों में ऐश करने और करानेवाली कार्ल-गर्ल्स का भी यह शहर है । एक तरफ नर्मदाबेन जैसी सेठानियाँ हैं जो अपनी जिस्मानी भूख को मिटाने के लिए रोज नये आदमियों को खरीदती हैं , परंतु इसी शहर में गंगूबाई जैसी नौकरानियाँ या केले बेचनेवालियाँ भी हैं जो अपनी इज्जत-आबरू के लिए सबकुछ न्यौछावर कर देती हैं । यहाँ इस उपन्यास पर हम भाषा की दृष्टि से विचार करेंगे ।

उपन्यास के "आमुख" में वस्ताद और चेले का वार्तालाप दिया है , जिसमें चेला पोपट वस्ताद से "तिरिया" के चार भेदों की बात करता है जो वात्स्यायन के कामसूत्र में दिए गए हैं । वह कहता है — " तिरिया के चार भेद होते हैं — पदमनी , चत्रनी , शंखिनी और हस्तनी । ... इनमें से पदमनी और चत्रनी उधार टाइप की याने की ठण्डी होती हैं । सिर्फ साधू-महात्मा और बनिया भाइयों के काम की । औरत-में-औरत तो हस्तनी और शंखिनी । हस्तनी के पीरू ये बड़े , ये सख्त होते हैं , कि अमरीकन चोलियों में भी न समाएं , ज्यों-त्यों समाएं भी , तो दरजी की मिहनत बेकार कर दें । और ... " इसके उपरांत पोपट शंखिनी के बखान करने जा रहा था कि वस्ताद बीच में ही टोक देते हैं —" बस , और बखिए मत उघाड़ अक्लि के चमचम । कसम हाजी मलंग शा की , रह गया तू कबर-का-कबर में ही । गुरू की भक्ति बेकार चली गई । यह तो वही मिसल हुई , बेटे , कि बारा बरस दिल्ली में रहे , क्या किया ,

भाड़ झोंका । सुन पोपट , असल में तिरिया के चार नहीं , सिर्फ दो भेद होते हैं । .... सेठानी और घाटन ... पर , हाथीदांत का बटन दिखाने से , हाथी को तू क्या खाक समझेगा ? तुझे तो बारीकी से समझाना पड़ेगा । सुन , तिरिया के जो दो भेद मैंने देखे-सुने , एक दिलचस्प किस्से के रूप में , तुझे सुनाता हूं । बेटे , वस्ताद से मोहब्बत की यह बेजोड़ दास्तां , इश्के-कामरानी का यह लाजवाब किस्सा सुन -- और वस्ताद किस्सा यों शुरू करता है -- " सुन कलन्दर । ... देसाई भुवन , सातवां माला , कालबादेवी , मुंबई नं 2 , के शानदार फ्लेट में रहनेवाली सेठानी नर्मदाबेन और गांव पिलखोली , पोस्ट-तालुका रैंसी , जिल्हा सतारा , हाल मुकाम मकनजी-बमनजी की चाल , खोली नं. पंधरा , भुलेश्वर , मुंबई नं. 2 , की गंगूबाई का यह किस्सा है । पहली के पास दिल था , दिलदार थे , दौलत थी । दौलत के नशे में , उसने दिल भी गंवाया , दिलदार भी । ... खजूर छाप नोटों से उसने जिसम तो खरीदे , पर सच्ची मोहब्बत न खरीद सकी । सो बेटे , एक दिन उसे कहना पड़ा -- " गंगूबाई, तने नाणा केटला जोइए , मारा पास थी लई जा । जो तारी रहवानी सगवड न होय , तो हुं तने मारो बांदरानो फ्लेट आपीश -- पण हुं तारे पगे पडुं छुं , तू करसन ने तारा प्रेममां पडवानी ना पाडी दे । ... " दूसरी के पास दिल था , जिसे दांव पर लगाकर , दिलदार और कलदार बटोरने के कई सुनहरी मौके उसके सामने आए , पर उसने "एक आणे ला दोन , दोन-दोन आणेला तीन " केले तो बेचे , दिल न बेच सकी । नर्मदाबेन से बोली -- "सेठानी बाई , मला ही तुमची दौलत नको , तो बांदराचा फ्लेट नको । तो माझा मनाचा मीत -- तो करसन , करसन महाराजे गोविन्दा , मला फकत तोच पाहिजे । "14

प्रस्तुत उपन्यास में हमें मटियानी की शैली के कई-कई स्तर प्राप्त होते हैं । गांजा-चरस वालों की शैली भी यहां मिलती है । यथा — " बम-बम ... न जीने की खुशी , न मरने का गम । सटक , शंभू की बूटी में काहे की अटक । चल शंभू की शरन को , उसीने दिया तन को , वही देगा कफ़न को । ... या अली , तेरे बंदे गली-गली , न किसीकी खरी-खोटी , न किसी की भली । ... चली-चली ... तेरे नाम की चिलम चली ।"[15]

तो दूसरी तरफ एक सेठानी की गुजराती भाषा का उदाहरण देखिए — " शी मुसीबत छे । धणी तो लास्ट-शो सिनेमा जोईने , पान-तम्बाकू खातो-खातो बे वागे घेर आवे , अने पछी चार वागे सुधी "नाकाम नी टिंगल " करतो फरे ... अने , ए भैया लोको बनारस -बरेली क्यां-क्यां थी मुंबई आवी गया ... जरीक आंखड़ियो लागे त्यारे ज बूम पाडवानी शरूआत करी दे ... " दूध वाला ... दूध वाला । " ए लोकोना भैंसोने हैजो पण न थाय । { क्या मुसीबत है । पति तो लास्ट-शो सिनेमा देखकर , पान-तम्बाकू खाते-खाते , रात के दो बजे घर आते हैं और फिर चार बजे तक " बेकार की छेड़छाड़ " करते रहते हैं — और ये दूधवाले न जाने बनारस-बरेली कौन-कौन शहर से बम्बई आ गए , जरा आंखें लगी नहीं , कि चिल्लाना शुरू कर देते हैं — " दूधवाला । दूधवाला । " इन लोगों की भैंसों को हैजा भी नहीं होता । }"[16]

इसी उपन्यास में नर्मदाबेन सेठानी को एक विपुलवासनावती नारी के रूप में चित्रित किया है , किन्तु क्या वह शुरू से ऐसी थीं ? नहीं , अपनी किशोरावस्था में , कालेज-काल में , वह भी एकनिष्ठ प्रेम में विश्वास करती थी । नर्मदाबेन की उस समय की मनः स्थिति का वर्णन लेखक इन शब्दों में करता है —" ऐसे वहमी-क्षणों में , नर्मदा-बेन न आ रही अंगड़ाइयों को बार-बार लेती हैं , जम्हाइयां लेने के लिए , अपने रेशमी रूमाल से होठों को देर तक थपथपाती

रहती है , और इस दौर में , उसका मन , याद की तेज़ घोड़ी पर बैठा-बैठा , अतीत के पड़ावों तक सैर कर आता है । ... उन दिनों की बात है , जब नर्मदाबेन , कुमारी नर्मदा जवेरी के रूप में , बम्बई के चेलाराम कालेज में पढ़ती थी । सह-शिक्षा की खुली आबहवा में , एक फूल जूड़े में लगाकर , सौ जगह खुशबू बिखेरती थी । जिस साल नर्मदा ने बी.ए. सीनियर किया , उस साल कालेज के दो-[illegible] सौ अट्ठासी छात्रों में से , सिर्फ एक-सौ अड़तीस पास हुए थे । ... फेल होने वालों की लिस्ट में एक नाम चन्द्रकान्त दोशी का भी था ।[17]

चन्द्रकान्त नर्मदा को चाहता था । नर्मदा भी उसे दिलोजान से चाहती थी । चन्द्रकान्त जब यह आशंका व्यक्त करता है कि उसके पिता उसकी शादी किसी करोड़पति से कर देंगे , तब वह प्यासे [illegible] पपीहे की भाँति तड़फ-तड़फ कर मर जायेगा । उसके उत्तर में नर्मदा कहती है । यथा — " उसके मुंह को अपने सीने से लगाती हुई , नर्मदा जवेरी बोली — " तुम " ज्योग्राफी " में फेल हुए हो ना ? होते क्यों नहीं ? ... तुम्हें इतना भी तो पता नहीं , कि नर्मदा कभी दिशा नहीं बदलती । ... तुम्हें मेरे प्यार पर , मुझ पर जरा-सा भी भरोसा नहीं , कान्त ? कालेज और यूनीवर्सिटी की दूरी क्या हमारे प्यार के लिए सात समन्दर बन जाएगी ? ... " नर्मदा के अनांचल सीने से लगा , चन्द्रकान्त बोला — " भरोसा तुम पर तो है जवेरी । पर जमाने पर नहीं । इस जमाने में , मेरी नर्मद , प्यार को "रिसीव " करने वाले और "गाइड" करने वाले अलग-अलग है । "[18] तब नर्मदा हंसते हुए कहती है — " एक बार तुम फिर हिन्दुस्तान की "हिस्ट्री " और " ज्योग्राफी " पढ़ो , दो शी । ... तब तुम्हें मालूम होगा , ऊबड़-खाबड़ पहाड़ों और चट्टानों के बीच से बहने की अभ्यासी नर्मदा , मैदानों में बहने की लालच से , गंगा-यमुना की सौत नहीं बनती है । तुम्हारी नर्मदा प्यार की भूखी है , कान्त , पैसे की नहीं । "[19] तब नर्मदा के स्वर में एक

एक संकल्प , एक प्रखरता थी । किन्तु नर्मदा का दुर्भाग्य है कि उसकी शादी सेठ नगीनदास नामक एक करोड़पति अधबूढ़े-से हो जाती है । नर्मदा की उद्दाम वासना को थामने-थाहने का ताव उनमें न था । फलतः नर्मदा का वह "प्यार" जिस्मानी वासना की वैतरणी में डूबने-उतराने लगता है । सेठ उसे संतुष्ट नहीं कर सकता । पर अपने पैसों की ताकत से वह ऐसे आदमी मुहैया कराता है जो सेठानी की जिस्मानी प्यास को बुझा सके । ऐसे में एक-दो को सेठानी सचमुच में प्यार करने लगी थी , परंतु उसकी जरा-सी बू आने पर सेठ उनको ठिकाने लगा देता था ।" अब उसके पास (नर्मदा के पास) दौलत की ताकत थी । उसने अब दौलत को अपने लिए इस्तेमाल करना सीखा और इस्तेमाल करने का ऐसा तरीका सीखा , कि नगीनभाई को भी एतराज नहीं रहा । ... उसने मंदिर बनवाया , पुजारी अपनी पसंद का रखा । उसने "अनाथालय" खोला , मैनेजर अपनी चाहत का रखा । उसने गर्ल्स स्कूल बनवाया , तो उसका प्रिंसिपल अपनी मोहब्बत के स्कूल में भर्ती कर लिया । ... यों वह एक "सुसैटी-वूमन" बन गई । "सुसैटी वूमन" जो ऐसी खूबी से आशनाई और अय्याशी के खेल खेल सके , कि खेल "गुल्ली-डंडे का " हो और मैदान "किरकेट" का दिखाई पड़े । "डिरामा" लैला-मजनू " और "शीरीं-फरहाद " का हो , पर "सीन " रामायन-महाभारत के , वेद-कुरान के दिखाई पड़ें । पर्दे के अन्दर जिस्म और जवानियों की कालाबाजारी के सौदे हों , पर पर्दे पर तस्वीरें साधु-भगतों और बरमा-बिस्नू की बनी हों । .... (पर) बेटे , एक बात जरूर है । ... और चाहे जो हो , नर्मदाबेन सेठानी है बड़ी नरम दिल । वह मोहब्बत और मोहब्बत करने वालों की कद्र करती है ।" [20] सेठानी को कविता की भी अच्छी समझ है । उनके घर जो गोष्ठियां और मुशायरे होते थे , उन्हीं के जरिये वह एक नवयुवान कवि कृष्ण से परिचित होती है और उसकी किशोरावस्था

का कान्त मानो फिर से जी उठता है । पर कृष्ण तो केलेवाली गंगूबाई को चाहता है, अतः नर्मदाबेन सेठानी के सपनों पर पुनः तुषारापात हो जाता है ।

पर इस उपन्यास की जो खास बात है वह है उसकी भाषा-शैली । भाषा-शैली के कारण ही वह अनेक बार पठनीय उपन्यास बन जाता है । उसकी भाषा का एक स्तर तो "बम्बइया-हिन्दी" का है, दूसरा स्तर वस्ताद और पोपट की भाषा का, हालांकि उसमें "बम्बइया-हिन्दी " का भी पूरा टच है, और एक तीसरा स्तर है लेखक के चिंतन की भाषा । यह चिंतन की भाषा मटियानीजी में क्रमशः विकसित होती गई है, किन्तु यहां उसके आगाज तो मिल ही जाते हैं ।

"बम्बइया-हिन्दी" के संदर्भ में स्वयं लेखक ने उपन्यास में कोष्ठक में एक टिप्पणी दी है, जो इस प्रकार है —

(यों भी बम्बई की खास अपनी एक हिन्दुस्तानी है जो खड़ी बोली और उर्दू की शैली में बोली जाती है, पर उसमें मराठी-गुजराती से लेकर, पंजाबी, बंगाली, फारसी, तमिल-तेलुगु और ठेठ मैथिली-अवधी के शब्द भी रहते हैं । बात यह है, कि बम्बई में जब कोई मद्रासी या बंगाली हिन्दी बोलता है, तब वह, बीच-बीच में, एकाध अपने-अपने शब्द भी लगाता जाता है । ऐसा ही मराठी-गुजराती और तेलगू भाषी भी करते हैं । इस तरह बम्बई की आम भाषा की अपनी खासियत है । न्यूनाधिक इस शहर में ही नहीं, पूरे बम्बई-राज्य[21]-भर में हिन्दी का यही "बम्बइया-रूप" प्रचलित है । ...)[22]

इधर "बम्बइया-फिल्मों " में एक अलग "टपोरी-लैंग्वेज " पनप रही है । " आती क्या खंडाला" गीत के बाद तो फिल्मों में "टपोरी-गानों" की एक रूढ़ि चल पड़ी है । "मुन्नाभाई एम.बी.बी.एस. " फिल्म में इस "टपोरी-लैंग्वेज " का भरपूर प्रयोग हुआ है ।

प्रस्तुत उपन्यास में प्रयुक्त लेखक की चिंतन-भाषा का एक उदाहरण यहां दिया जा रहा है —

"कृष्ण का हृदय न जाने कैसा हो आया था । यह औरत नाम की चीज़ कितनी तुनक-स्वभाव की होती है, कितनी कोमल-प्राण होती है ? जरा-जरा पर रो पड़ती है । ... यों ही नहीं, अपने लिए नहीं, अपनी पीर में नहीं । वह तो पुरुष के लिए, पुरुष की याद में और पुरुष के सामने रो पड़ती है । ... नारी और नदी का यह कैसा स्वभाव है, कि एक पथ-भ्रष्ट पुरुष की स्मृति में भी आत्मीयता के सौ-सौ आंसू रो देती है, निष्ठुर मन वाले तन को भी युग-युगों तक आत्मस्थ किए रहना चाहती है — और दूसरी जहां बड़ी-बड़ी चट्टानें हों, जहां बड़े-बड़े पत्थर हों, वहां और हहराती-हहराती और उनसे केलि-किल्लोल करती बहती है । ... और तब उसे महसूस हुआ ... बाहर से वह भले ही कुछ ऐसा अनुभव कर रहा है, कि नर्मदाबेन और गंगूबाई को लेकर उसके मन-मस्तिष्क अशान्त हो उठे हैं, और गलतफहमियों के एक टेढ़ी-मेढ़ी लकीरों से बने दायरे में वह फंस गया है ... पर, यह भी सत्य है, कि इन दोनों के सान्निध्य में उसकी अपनी शून्यता को एक आकार मिला है — उसकी अपनी उदासीनता को एक बहल-टहल लेने का अवसर मिला है — उसके मौन को मुखर करने वाली कोई ध्वनि मिली है, जो अंगुली-धरे कानों में प्रविष्ट हो गई है ... उसकी अपनी आंखों को एक स्वप्नशीलता मिली है, जो निरानन्द-निस्पंद जीवन-क्रम को एक नया वातावरण दे रही है ।" [23]

यही लेखकीय चिंतन-भाषा कई बार सूत्रों और सूक्तियों में भी ढल गई है । ऋचाएं और कैसे बनती हैं ? आचार्य रामचन्द्र शुक्लजी के शब्दों को उधार लें तो कह सकते हैं कि लेखक मटियाणीजी मानो उस समय "रसदशा" में चले जाते हैं ।

और अब वस्ताद और पोपट की भाषा का एक रूप देखिए --

" एक मिनिट, वस्ताद। ... आपने यह इसटोरी मेरे अलावा इससे पहले किसीको भी सुनाई थी ? ... आपका किस्सा डीरेक्टर इंशाअली की पिक्चर से बना है, या इंशाअली ने आपकी इसटोरी पार्सल करके अपना टेलीफून नंबर मिलाया है। ... हां तो वस्ताद ... अपना किस्सा तो पूरा करो ... कादर भाई की छमियां ‖ दारू ‖ आने तक, बखत कट जाए। मरने की तैयारी में जो हो, उसका इलाज करना चाहिए, गुरु -- कफ़न लाके रखना ठीक नहीं। ... किस्से को अभी और रंगत, अभी और वज़न दीजिए ... वस्ताद कहते हैं -- " जब आखिरी वक्त किसी चीज़ का आ जाता है, बेटे ... तो उसे बनाए रखने की हिमाकत करना, खुदा के उसूलों से बगावत करना है ... अगर, तुम्हारे डीरेक्टर इंशाअली की पिक्चर तीन कलाक की जगह, बारा कलाक ‖ घंटे ‖ लगातार चलती रहे तो ? " ... वस्ताद चादर की शिकनें ठीक करते हुए बोले -- " पकी हुई फ़सल को ज्यादा अर्से तक खेतों में रहने देने वाले किसान को अक्लमंद कहा जाता है ? ... और तूने भी एक ही कही, बचपने, जवानी और बुढ़ापे की बात ... बाप बूढ़े न हों, बच्चे जवान न हों ... तो इस दुनिया में पकी फसल कटे नहीं, और ऐसा टैम आ जाए, कि दूसरी फसल बोने को जमीन ही खाली न मिले। ... सो कलंदर, हर चीज़ अपने दायरे, अपने टैम में ही अच्छी लगती है। ... जब हम ग्वालियर स्टेट में थे, वहां एक उस्ताद से हमारी दुआ-सलाम थी ... वो कहा करते थे, जमन कल्यान राग को सवेरे और भैरव राग को शाम को गाए तो गायक कोढ़ी हो जाए ... तो बेटे ... तिरिया के दो भेद ... सिर्फ़ दो भेदों की कथा तुम्हें सुनाई ... अब मुझे नींद आ रही है। " और वस्ताद ने मुंह ढांप लिया।" 24

§3§ कबूतरखाना :

यह उपन्यास सन् 1960 में आत्माराम एण्ड सन्स से प्रकाशित हुआ था । मुंबई का एक प्रसिद्ध विस्तार — भुलेश्वर — इसकी कथा के केन्द्र में है । इस उपन्यास में लेखक ने केवल दो वर्गों के अंतरंग जीवन को रूपायित किया है । ये दो वर्ग है — भुलेश्वर की सेठानियों का वर्ग और उनके यहाँ झाड़ू-पोंचा, बर्तन, कपड़े धोने का काम करने वालों का वर्ग । मुंबई में उनको "रामा" कहा जाता है । लेखक मुंबई की एक प्रसिद्ध× प्रसिद्ध खाद की दुकान पर "छोकरे" का ही काम करते थे । उस समय उनको जो कई सारे अनुभव हुए, तथा इन रामाओं के संपर्क में आना हुआ, इन सारे अनुभवों को "कबूतरखाना" में लेखक ने प्रस्तुत किए हैं । इसके बारे में खुद लेखक ने एक स्थान पर लिखा है —

" मैं ढाई-तीन वर्ष की अवधि तक, बम्बई की एक प्रसिद्ध खाद की दुकान में रहा । एक नौकर की हैसियत से, वहाँ के दूसरे नौकरों के संसर्ग-संपर्क में आया । इसके अलावा सेठों के घरों में काम करने वाले घाटी लोगों का साथ भी बहुत मिला । सेठों के घरों में काम करने वाले घाटी को "रामा" कहा जाता है । ऐसे ही एक "रामा" से उसकी आत्मकथा सुनी, उसीके मुख से, उसीकी भाषा में, — उसीके स्नेह-संवेदन-क्रोध-आक्रोश को, दार्शनिक मनोभावों के साथ — और लोग भी सुने — इसी उद्देश्य से, गणपत रामा को सबके सम्मुख अपनी कथा कहने को प्रस्तुत कर सका हूँ । ... और कहाँ तक मेरे द्वारा गणपत रामा के प्रस्तुतीकरण का प्रश्न है, यही कहूँगा, कि गणपत भाऊ के शब्दों में " जो आँखी से देखा, जो कानों से सुना — वोच बोलता । " की प्रवृत्ति मुझमें भी है ही ।"[25]

डा. अमर जायसवाल इस उपन्यास के शैली-शिल्प के संदर्भ में कहते हैं :" यह लघु उपन्यास अपनी शैली और शिल्प में सीधा-सादा होते हुए भी, काफी परिणामकारक सिद्ध हुआ है, और यही इस रचना की सबसे बड़ी सफलता है ।"[26]

गणपत रामा के शब्दों में यह पूरा बम्बई एक कबूतरखाना है। इस कबूतरखाना में गणपत, सखाराम, दत्तू भाऊ, पटवर्द्धन, परदेशी विट्ठल जैसे कबूतरनुमा घाटी सेठानियों के भाडी-बरतन मांजने के साथ-साथ सेठानियों पर भी हाथ साफ करते हैं। यहां जिन सेठानियों को लिया गया है उनमें वसुंधराबेन, यशोदादेवी, नीलाम्बरी देवी, नर्मदाबेन आदि हैं। ये वैभव-विलास में पली विपुलवासनावती सेठानियां इन कबूतरों से अर्थात् रामाओं से, नौकरों से, खानसामाओं से, मालियों और सोफरों से अपनी वासना की आग बुझाती हैं। किन्तु लेखक ने यहां गणपत रामा की कथा के द्वारा यह प्रश्न भी उकेरा है कि आखिर ये सेठानियां ऐसी क्यों हैं ? इनको इतना वहशी, इतना आदमखोर, किसने बनाया ? वे कौन-सी परिस्थितियां हैं जिनके तहत ये सेठानियां वेश्याओं से भी बदतर जीवन जी रही हैं।

कई बार तो हम देखते हैं कि ये सेठ लोग ही अपनी पत्नियों के लिए इस प्रकार की व्यवस्था कर देते हैं। लालजी सेठ सेठानी नीलाम्बरी देवी की लटों से खेलते हुए कहते हैं —
" रात्रे अहीं रहीने हुं शुं करूं छुं, हुं तो द्वारिका ना करसन जेवो, भिन्न-भिन्न उपवनो नां भिन्न-भिन्न पुष्पो ना रसिया भ्रमर. तारा माटे मारो शुं उपयोग ? तारा माटे तो मैं होटलना रामा लोकोने राख्या छे ने ? " 27

इस उपन्यास का गणपत रामा कहता है : " न बिस्तर, न चादर, न औरत, न रोटी। कभी-कभी तो ऐसा लगता है कि सिर्फ रोटी मिलती रहे और कुछ नहीं पर जब रोटी पेटभर पेट-भर उपलब्ध हो जाती है, तो औरत की जरूरत महसूस होने लगती है, कि काश ! यह मां के प्यार भरे हाथों से होते हुए हम तक पहुंचती। काश ! यह दोत-कटी बनकर बहन के दांतों तक पहुंचती। " 28 परंतु मां-बहन- पत्नी के प्यार के बदले उनको मिलती है सेठानियों की हवस।

"कबूतरखाना" में गणपत आदि रामाओं की भाषा, तथा ~~सेठ-सेठानियों की भाषा~~ वेश्याओं की भाषा में हमें "बम्बइया-भाषा" का "टच" मिलता है जिसमें गुजराती, मराठी, कोंकणी, पंजाबी, राजस्थानी आदि अनेक भाषाओं के शब्द मिलते हैं। मुसलमान दादाओं तथा पोकेटमारों और जेबकतरों की भाषा में अरबी-फारसी और उर्दू के शब्द भी मिल जाते हैं। सेठ-सेठानियों की भाषा में गुजराती शब्दों की भरमार रहती है, और कहीं-कहीं तो पूरे-के-पूरे वाक्य और परिच्छेद गुजराती के होते हैं। ऐसे में मटियानीजी ने पाद-टिप्पणी में उसका हिन्दी अनुवाद भी प्रस्तुत किया है, जो अन्य भाषा-भाषियों के लिए उपयोगी हो सकता है। लेखकीय टिप्पणियों और विश्लेषणों में हमें स्वयं मटियानीजी की भाषा मिलती है। इसके एक दो उदाहरण यहां प्रस्तुत है—

" एक पंख नोंचे हुए कबूतर की तरह अंदरूनी तड़फ और बाहरी गुटरगूं की एक बोलती हुई तस्वीर है (कबूतरखाना)। बम्बई की सेठ-सेठानियों के कबूतरनुमा नौकर गणपत रामा की मुंहबोली दास्तान है, और अंतस को अकुला मस्तिष्क को झकझोर देने वाली आपबीती अनुभूतियों का एक ढांचा है जिसकी पसली-पसली आतशी शीशे का एक चटका हुआ टुकड़ा है, और जिसका रेशा-रेशा एक रिसता हुआ नासूर। "[29] यहां पर तथाकथित शिक्षित एवं संपन्न लोगों के यथार्थ को लेखक ने एक तीखी एवं व्यंग्यात्मक किन्तु मर्मवेधक भाषा में निरूपित किया है। तो एक अन्य स्थान पर खुद मटियानीजी कहते हैं —

" ये शाकाहारी पूंजीपति रावण कुंभकरण के इन वंशधरों से क्या कहें ? रंडियां जिन्हें कहते हैं उनसे कहीं ज्यादा ये बेशर्म हैं। रंडियों में बेशर्मी होती है, मगर ये तो बेहया होते हैं। बेईमान होते हैं। पैसा, केवल पैसा ही, इनका ईमान है। केवल पैसा ही इनका धर्म-ईश्वर है।"[30]

निष्कर्ष :

यद्यपि अध्याय के अन्त में समग्र अध्याय के निष्कर्षों निष्कर्षों को प्रस्तुत करने का हमारा उपक्रम प्रायः इस समूचे प्रबंध में रहा है ; तथापि यहां इस अध्याय के अग्र अंश के कतिपय निष्कर्ष दिए जा रहे हैं । यह केवल हमारी अपनी अध्ययनगत सुविधा के लिए है ।

आलोच्य उपन्यासों में हमें मुख्यतया भाषा के तीन स्तर उपलब्ध होते हैं । एक तो है, बम्बइया-भाषा, जिसके स्वरूप पर स्वयं लेखक ने प्रकाश डाला है । [31] दूसरी भाषा है दादाओं, उस्तादों और उनके चेलों-चपाटियों की भाषा, जिसमें बम्बइया भाषा के साथ-साथ अरबी-फारसी और उर्दू के शब्द मिलते हैं । और भाषा का तीसरा स्तर है लेखकीय भाषा । उसमें लेखक ने प्रशिष्ट हिन्दी के साथ-साथ कहीं-कहीं कुमाऊं-बोली का भी प्रयोग किया है । जो लोग मटियानीजी की भाषा को बाजारू, हल्की या अश्लील कहते हैं, उनसे निवेदन है कि वे मटियानीजी की इस भाषा को जरा गौर से देखें ।

बम्बइया भाषा की अपनी खास विशेषता है । जैसे बम्बई में समूचे भारत के लोग मिलते हैं, ठीक उसी तरह इसमें भारत के लगभग तमाम भाषाओं के शब्द मिलते हैं । भाषा का यह रूप न्यूनाधिक रूप से पूरे महाराष्ट्र में व्याप्त है । महाराष्ट्र में स्थानिक लोगों की भाषा तो मराठी, कोंकणी, गोवानीज़, गुजराती, खानदेशी आदि होती है ; परन्तु ये लोग जब हिन्दी बोलते हैं तब उनकी हिन्दी का रूप प्रायः बम्बइया होता है, जिसमें "था", "थी" के लिए "होता-होती", "ही" के लिए "च", "वही" के लिए "वोच", "पीछे" के लिए "पीछू", -मेरे-तुम्हारे" के लिए " हमेरे-तुमेरे", "चाहिए" के लिए "होना" "करेगा" के लिए "करिंगा", "बोलेगा" के लिए "बोलिंगा "

"बोलते" के लिए "बोलता", "क्या" के लिए "काय", "चाहिए" के लिए "पाहिजे", "नहीं" के लिए "नको" जैसे शब्द बहुतायत से मिलते हैं ।

(आ) अन्य नगरीय परिवेश से युक्त उपन्यासों की भाषा :

जैसा कि प्रस्तुत अध्याय के प्रास्ताविक में संकेतित किया गया है, मुंबई के अतिरिक्त इलाहाबाद, दिल्ली, अल्मोड़ा, नैनिताल, बनारस प्रभृति नगरों के परिवेश को भी मटियानीजी ने लिया है । यहां हमारा उपक्रम ऐसे उपन्यासों की भाषा पर सोदाहरण दृष्टिपात करने का है ।

(1) छोटे छोटे पक्षी :

"छोटे छोटे पक्षी" सर्वप्रथम सन् 1975 में प्रकाशित हुआ था । इसका दूसरा संस्करण सन् 1978 में नेशनल पब्लिशिंग हाउस, नयी दिल्ली से हुआ । उपन्यास के नायक-नायिका सतीश और दीक्षा ही वे छोटे छोटे पक्षी " हैं । इसमें प्रेम-विवाह से सम्बद्ध उसके लगभग तमाम पहलुओं पर गंभीरतापूर्वक विचार हुआ है । जिस प्रकार आकाश में उड़नेवाले "छोटे छोटे पक्षियों " को हवा में उड़ने के लिए गज़ब का संतुलन बनाए रखना पड़ता है ; ठीक उसी प्रकार प्रेम-विवाह करने वाले पक्षियों को — " प्रेम-पंखियों " को — भी जीवन में बराबर संतुलन रखना पड़ता है । प्रेम-विवाह करना लगभग विरूद्ध-प्रवाह में तैरने जैसा है, और उसमें कई प्रकार के खतरों और मुश्किलों से रूबरू होना पड़ता है । प्रेम करने वाले जोड़े अपने "घूमने-फिरने " वाले समय में तो लगभग काल्पनिक दुनिया में विहार करते हैं, परंतु जीवन की कठोर वास्तविकताओं से उनका वास्ता बाद में पड़ता है । इसलिए ऐसे जोड़े प्रायः बाद में बिखर जाते हैं । प्यार के

प्रथम ज्वार के थम जाने के बाद उनमें समस्याएं पैदा हो जाती है और उनका वैवाहिक जीवन खत्म हो जाता है । यह उपन्यास ऐसे सब जोडों के लिए एक आदर्श है और जो यह कहता है कि प्रेम-विवाह में भी अन्य विवाहों की तरह समझदारी , विवेक और "बैलेन्सिंग" का होना बहुत आवश्यक है । किन्तु यहां हम केवल भाषा की दृष्टि से उसके कतिपय पक्षों पर विचार करेंगे ।

लेखक की शैली कहीं-कहीं व्यंग्यात्क हो गई है । हमारे यहां प्रायः देखा जाता है कि "फैशन" के नाम पर लोग शरीर का प्रदर्शन करते हैं । एक स्थान पर उन्होंने इसी बात पर चिकोटी ली है — " तुम कह रही हो तो ध्यान आ रहा है कि यह बात अक्सर लोगों को कहते सुना है कि औरतों को सर्दी कम लगती है । इस सिविल लाइन्स की ओर शाम को निकलो , तो आजकल ओवरकोट पहने हुए मर्दों के साथ "स्लीवलेस" ब्लाउज पर दिखावे भर का शाल डाले औरतों को अक्सर देखा जा सकता है । कुछ औरतों को अपना उत्तरप्रदेश और मध्यप्रदेश दिखाने का शौक होता है । सिर्फ मद्रास-हैदराबाद वाली साइड ढंके रहना चाहती है ।" [32]

एक बात यहां ध्यातव्य रहे कि इस उपन्यास के नायक-नायिका इलाहाबाद के हैं और प्रेम-विवाह करने भागकर दिल्ली जाते हैं । अतः भौगोलिक परिवेश की दृष्टि से देखें तो उसमें अंशतः इलाहाबाद और अधिकांशतः दिल्ली महानगर का परिवेश मिलता है । मुंबई की तरह दिल्ली की भाषा का भी एक विशेष "टोन" होता है जिसे हम यहां देख सकते हैं । दिल्ली की हिंदी पर पंजाबी भाषा का प्रभाव देखा जा सकता है ।

उपन्यास का शीर्षक ही प्रतीकात्मक है । यह प्रारंभ में हम निर्दिष्ट कर चुके हैं । वस्तुतः "छोटे छोटे पक्षी" में नायिका दीक्षा और नायक सतीश ही वे छोटे छोटे पक्षी हैं । जिस प्रकार पक्षी ऊंची-ऊंची उड़ानें भरते हैं , उसी प्रकार प्रेमी-युगल भी सपनों की

उड़ान भरने के लिए निकल पड़ते हैं । कहिए उड़ निकलते हैं , किन्तु पक्षी आकाश में उड़ पाते हैं , उड़ते रह सकते हैं , क्योंकि वे अपना संतुलन बनाए रख सकते हैं । प्रेमियों की उड़ान भी तभी सार्थक हो सकती है , जब उनमें इन "छोटे छोटे पक्षियों-सी" संतुलन-शक्ति हो ; बाह्य- सामाजिक परिस्थितियों के सामने संघर्ष के साथ तालमेल बिठाने की शक्ति और विवेक हो । यह शक्ति और विवेक इस उपन्यास की नायक दीक्षा में है ।

चिंतनशीलता की दृष्टि से इस उपन्यास का एक खास महत्व है । इस उपन्यास में हमें अनेक चिंतनाभिमुख सूत्र या सूक्तियां मिलती हैं । यथा —

/1/ आदमी जो कुछ कहना चाहता है , उसमें अगर भाषा की दिक्कत महसूस हो तो यह मान लेना चाहिए कि सारी दिक्कत उसके अपने असमंजस की है , भाषा की नहीं । /2/ सुंदर औरत समझदार भी हो तो वह अपना भविष्य खोज लेती है । /3/ जो औरत अपने स्वाभाविक गुणों से नहीं , बल्कि चालाकियों से किसी पुरुष को अपने वश में करेगी , वह जिंदगी-भर डरती रहेगी । /4/ आदमी की पहचान सिर्फ जोखिम उठा लेने से नहीं , निभा ले जाने से होती है । /5/ मुझे उन मूर्खों पर हंसी आती है , जो स्त्रियों के मामले में अपने-आपको बुद्धिमान समझते हैं । /6/ गृहस्थी शुरू करना , वास्तव में नदी में नाव उतारना है और नाव में यदि जगह-जगह छेद और दरारें हों , तो पतवार भी उसे डूबने से बचा नहीं पाती । /7/ सिर्फ प्रतिभा और परिचय ही नहीं अवसर भी आदमी की जिन्दगी में बहुत बड़ी भूमिका अदा करते हैं । लेकिन इतना मैंने अपने आज तक के संघर्ष से जरूर सीखा है कि अव-सर मिलने से पहले ही टूट जानेवाला आत्मविश्वास अंधेरे जंगल में यात्रा करते हुए हाथ से गिरकर बुझ जाने वाली मशाल होता है ।

अपने प्रति संशय ही हो , तो आदमी को जाखिम की जिन्दगी अपनानी ही नहीं चाहिए । /8/ आदमी हारता नहीं , हार मान लेता है । /9/ जो आदमी अपने भविष्य के प्रति डरा हुआ रहता है वह बहुत खतरनाक और नीच किस्म का आदमी होता है । अपने भविष्य की उम्मीदों में जीनेवाला आदमी ही उदार और मानवीय हो सकता है । /10/ आत्मविश्वास ✗ ही आदमी के चरित्रवान होने का सबसे बड़ा सबूत होता है । [33]

से
उपर्युक्त गद्यांशों में मटियानीजी की सूत्रात्मक भाषा-शैली का परिचय मिलता है जिनके लिए मटियानीजी प्रसिद्ध हैं । इस संदर्भ में डा. बटरोही लिखते हैं —" सूक्तिलुमा फतवे देने की उनकी सहज आदत थी । इस प्रकार की सूक्तियाँ उनके मुँह से इतनी सहजता से निकलती है कि हैरानी होती थी । आरंभ में उनका यह व्यवहार बड़ा पंडिताऊ खिजाने वाला लगता लेकिन उस सूक्ति का स्वर समझ लेने के बाद प्रभाव आत्मसात होता था ।" [34]

§2§ आकाश कितना अनंत है ।

यह उपन्यास सन् 1979 में विभा प्रकाशन इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ है । यह उपन्यास अल्मोड़ा के परिवेश पर लिखा गया है , हालांकि हिन्दी के ~~एक आलोचक ने~~ की एक आलोचिका ने उसके संदर्भ में लिखा है कि वह इलाहाबाद के परिवेश पर लिखा गया है । [35] उपन्यास गरीबी और बेकारी से जूझते युवक राजशेखर की है । राजशेखर एक असफल प्रेमी है । मीना नामक लड़की से वह प्रेम करता था , लेकिन मीना शेखर को छोड़कर प्रो. तिवारी से शादी कर लेती है । इसीके ~~xxx~~ फ्रस्ट्रेशन में वह प्रो. तिवारी को बीच बाजार थप्पड़ मार देता है । शेखर की यह हरकत उसे पूरे शहर में पोस्टर ~~xxx~~ बना देती है । किन्तु इसके साथ ही शेखर को कामरेड सूरज , अध्यापिका गीता और मिसेज मैठाणी की सहानुभूति प्राप्त होती है । उपन्यास

में जगह-जगह मार्क्सवाद विषयक गंभीर प्रपत्तियां भी उपलब्ध होती हैं । इस उपन्यास के संदर्भ में राजेन्द्र यादव लिखते हैं — " "आकाश कितना अनंत है " मैंने पढ़ लिया है । इसकी वैचारिक मौलिकता ने सचमुच बहुत प्रभावित किया है । जिस खूबसूरती और बेबाकी से सारी स्थितियों का विश्लेषण किया है गया है , वह हिन्दी में दुर्लभ है । जिस धैर्य और संतुलन के साथ इसके कथानक का विचार किया गया है , याने राजशेखर को पूरे शहर की मानसिकता के साथ ~~बढ़ाकर~~ जोड़कर बढ़ाया है , उससे स्थान-स्थान पर मैं ईर्ष्यालु हो उठा हूं । शारदा पंडित और गीता पाल के चरित्र बेहद बारीकी के साथ उकेरे गए हैं । उपन्यास ने मुझे केवल एक दिन में समाप्त करने को विवश किया है । यह उसकी पठनीयता ही सिद्ध करती है । यह सारा उपन्यास मुझे अद्भुत आत्मान्वेषण की यात्राओं में ले गया । शेखर की व्यक्तिगत ट्रेजडी , परिस्थितियां जिस तरह उठकर सजग संघर्ष और मानसिक विकृतियों से लड़ने के संकल्प तक पहुंचती है , यह किसी भी द्वन्द्वग्रस्त मन के लिए एक बहुत बड़ा आश्वासन ही है ।" [36]

जब हम उपन्यास की भाषा पर विचार कर रहे हैं , तो उपन्यास का निम्नलिखित परिच्छेद उद्धृत करना मेरे लिए बहुत लाजमी हो जाता है —

" तुम्हें शायद याद होगा शेखर । अभी परसों जब तुम्हें थोड़ी देर के लिए धूप में ले आया था , तो तुमने आकाश में उड़ते हुए पक्षियों की ओर संकेत करते हुए मुझसे कहा था — " कामरेड ददा । जरा देखिए तो सही , यह आकाश कितना अनंत है , और इन पक्षियों के पंख कितने छोटे-छोटे हैं । ... साफ है तुम्हारा इशारा हम लोगों के संघर्ष की ओर ही था कि खुद के "मिशन" की तुलना में हम लोगों की औकात कितनी छोटी है .... इस सिलसिले ~~में~~ में तुमसे मुझे सिर्फ एक बात — लेकिन

बहुत जरूरी तौर पर — ये कहनी है कि ये ठीक है कि आसमान का कोई अंत नहीं, वह सचमुच अनंत है। मगर, प्यारे, आदमी का अपनी इन्सानियत को अपने हाथों और अपने आँखों के सामने जी सकने का संघर्ष भी इससे कम अनंत हर्गिज नहीं है। संसार की सारी नियामतों से मूल्यवान और खूबसूरत यह संघर्ष न हमसे -तुमसे शुरू हुआ है और न हमारे-तुम्हारे साथ खत्म होगा।" [37] और इस प्रकार " आकाश कितना अनंत है " का एक और अर्थ यहां पर खुलता है।

इस उपन्यास में लेखक ने अनेक स्थानों पर व्यंग्यात्मक शैली का सहारा लिया है। यथा —" हमारे ये आज के वक्त के पोलिटिशियन हैं। गांधीजए जाने कौन-सी चमड़ी बख्श गए, साहब जवाब नहीं उनका। ये बहुत अच्छी तरह जानते और महसूस करते हैं कि लोग इनसे नफरत, सिर्फ नफरत करते हैं। लोगों के पास इन लोगों के लिए हिकारत के सिवा कुछ नहीं, मगर इनके सामने आप हों तो देखेंगे कि उनके चेहरे इस कदर ताजगी और चमक से भरे हैं है, कि जैसे सारे हिन्दुस्तान की जनता की मुहब्बत सिर्फ इन्हीं ही नसीब हों और मुल्क के बच्चे-बच्चे की फिक्र किसीको है है तो सिर्फ इन्हें।" [38]

इसी उपन्यास में नेहरू की पंचवर्षीय योजनाओं की भी xxxxxxxxx बखिया उधेड़ी गई है —" नेहरूजी की तुम बात कर रहे थे, उन्होंने भी सारी पंचवर्षीय, एकवर्षीय योजनाएं टाटा-बिरलाओं की प्लानिंग के मुताबिक बनायीं। इस मुल्क की जनता की, आर्थिक-सामाजिक मुक्ति की नियत से नहीं। सामाजिक लूट और उत्पीड़न का यह सिलसिला तब तक खत्म नहीं होना है, जब तक इस मुल्क की सामाजिक चेतना में विप्लव नहीं आना है।" [39]

यह उपन्यास हमारे समकालीन सामाजिक, राजनीतिक व सांस्कृतिक जीवन पर एक खुला दृष्टिपात करता है; अतः उसमें कई स्थानों पर पात्रों के माध्यम से लेखकीय चिंतन अभिव्यक्त हुआ है। इस उपन्यास के कामरेड सूरज मनुष्य की सदाशयता और उस निमित्त किए गए उसके छोटे-से प्रयत्न को भी सार्थक मानते हैं। यथा — " मैं बखूबी जानता हूं कि मेरे लिखने या अखबार निकालने से इस पूंजीवादी निजाम के लिए पहाड़ पर मक्खी के जा बैठने - जितना भी अंतर पड़ना नहीं है, मगर इस बारे में मुझे बाबा तुलसीदास की बानी दिलासा देती है कि मच्छर भी उड़ता जरूर है। ... शायद , वो भी महसूस करते थे कि मुगलिया सल्तनत पर रामायण फेंकना सामान्य तौर पर सिर्फ एक मजाक बनना है। जहां तक मेरा सवाल है, शेखर। मैंने तय कर लिया है कि अपने को हिन्दुस्तान के समाज का साठ करोड़वां टुकड़ा-भर मानकर चलता हूं। .... और अखबार निकालते हुए भी यह जोश नहीं रखना है कि इस पूंजीवादी निजाम के खिलाफ इन्कलाब कितना हुआ, बल्कि नज़र सिर्फ इस बात पर रखनी है कि इस "प्रोसेस" में मेरी खुद की समझ में कोई बेहतरी आयी या नहीं।"[40] कामरेड सूरज का यह कथन उन तमाम लोगों के लिए भी मार्गदर्शक-सा है, जो इस समय अपने कर्तव्य को लेकर किसी गहरी निराशा के शिकार हैं।

यहां कामरेड की जो भाषा है उसमें "बखूबी", "अखबार" "निजाम", "मुगलिया सल्तनत", "मजाक", "जोश", खिलाफ", "इन्कलाब", "नज़र", "सिर्फ", " बेहतरी" जैसे उर्दू शब्दों के प्रयोग हुए हैं। किन्तु इन शब्दों को बहुत ही सहज और सरल ढंग से उन्होंने प्रयुक्त किया है कि उससे हिन्दी की प्रकृति पर कहीं किसी प्रकार का असर नहीं पड़ता है।

प्रस्तुत उपन्यास की चिंतनात्मक सूक्तियाँ भी इसकी भाषा को भलीभाँति उद्घाटित करने में सक्षम हैं । यथा —

/1/ किसी दार्शनिक ने ठीक ही कहा है कि औरत जब तक प्रेम में रहती है, तभी तक वह अपनी भाषा में भी रहती है । बाद में तो वह सिर्फ दूसरों की भाषा और दूसरों के लिए बोलती है । /2/ जिन्दगी में जब भी हम कोई बड़ा फैसला लेते हैं, एक नया वक्त शुरू होता है । इसका शुरू होना तो स्वप्न की तरह होता है, लेकिन बितना — बितना सनातन पतझड़ के मौसम की तरह उम्रभर हमारे ही भीतर बना रहता है । /3/ इस गलतफहमी में आदमी को कभी नहीं रहना चाहिए कि "इमोशंस" सिर्फ उसमें है और प्रेम सिर्फ वही कर सकता है । ऐसा करना "इनह्युमन" होना है । /4/ देना अगर दूसरे पर अहसान करना है, खुदको उपकृत करना नहीं, तो फिर वह निहायत तुच्छ चीज है । /5/ दूसरों को सिर्फ वही आदमी बेहतर समझ सकता है, जो अपने को जानता हो, और दूसरों से भी पहले खुद से सच्चाइयों की उम्मीद करता हो । /6/ "इण्टेक्चुअल" होना एक बात है, और अपने "इण्टेलेक्ट" को, अपनी चेतना को किसी ~~बड़~~ बड़े लक्ष्य से जोड़ना, बिलकुल अलग बात । /7/ जो भी लोग इस बनिया निजाम के शैतानी नाखूनों को देख सकते हैं, लोगों को आगाह कर सकते हैं, वो इतने अकेले और बे-औजार हैं कि उनके और समाज के बीच कोई रिश्ता बनने नहीं पाता है । /8/ आदमी का धार्मिक वृत्ति का होना सरासर फिजूल होता है, अगर उसमें सामाजिक-मानवीय वृत्ति न हो । /9/ "क्रिश्चन-" आदमी के भीतरी जख्मों को भरता ~~महज~~ ही नहीं, उसे "रिच" कर जाता है । [41]

मटियानीजी के उपन्यासों में आने वाली ये सूक्तियाँ न केवल हिन्दी भाषा को अलंकृत करती है, बल्कि यदि उनके ही शब्दों का इस्तेमाल करें तो उसे "रिच" भी करती हैं ।

§3§ जलतरंग :

यह उपन्यास सन् 1973 में राजपाल एण्ड सन्स से प्रकाशित हुआ है । उपन्यास असंतुष्ट प्रेमियों और अतृप्त यौन-वासनाओं को लेकर है । कथानक का अधिकांश मिसेज खोसला के आसपास घुमता है । मिसेज खोसला उस प्रत्येक व्यक्ति से नाखुश है जो उसके जीवन के बारे में सबकुछ जान लेता है । अपने पति मिस्टर खोसला से भी वह अब उब चुकी है । मिसेज खोसला नैनिताल में बी. के. नामक एक शादी-शुदा व्यक्ति के परिचय में आती है । मिसेज खोसला अपने किसी भी प्रेमी से शारीरिक संबंध स्थापित करना नहीं चाहती , क्योंकि उसके साथ ही प्रेम का रिश्ता समाप्त हो जाता है । बी. के. के सम्पर्क में आने पर भी वह शारीकरिक रिश्ता नहीं बनाना चाहती थी , परंतु ऐसा हो नहीं पाता है और बी. के. अपने उद्देश्य में सफल हो जाता है , क्योंकि वह ऐसा ही चाहता था । उपन्यास के एक दूसरे प्रमुख पात्र हैं फादर परांजपे । कभी कट्टर हिन्दू थे , किन्तु क्रिश्चियन प्रेमिका की मृत्यु के उपरान्त ईसाई धर्म को अंगीकृत कर लेते हैं । उपन्यास में मिसेज खोसला और फादर परांजपे के लंबे-लंबे संवाद चलते हैं । कथानक की दृष्टि से बहुतों को शिथिल लगने वाला यह उपन्यास अपने चिंतन-पक्ष में काफी पुष्ट है । उसका भाषागत वैभव हमें मोहित कर सकता है । वस्तुतः यह एक बार नहीं , बल्कि कई-कई बार पढ़ने वाला उपन्यास है और उसका प्रत्येक वांचन हमारी आंतरिक समृद्धि में वृद्धि कर जाता है । भाषा की दृष्टि से उसके कुछ अंशों को देख जाना श्रेयस्कर रहेगा ।

" अब तुम शायद मुझे बहुत "वल्गर" कहोगे , अगर मैं यह कहूं कि मेजर साहब के साथ सो चुकने के बाद मुझे हमेशा एक अजीब-सी बेचैनी और रिक्तता महसूस होती है । सेक्स का एक "बे लंच" या "डीनर" की तरह रूटीन जिन्दगी का हिस्सा बन जाना ठीक नहीं । "सेन्सिटीव" और जीवन के ज्यादा गहरे "विज़न" या तकलीफ से गुजरते हुए को ऐसा "सेक्स" कभी तृप्त नहीं करता । मुक्त कर देने की

हद तक तृप्त । यह सच है बी.के. कि सेक्स में सिर्फ तृप्ति ही नहीं, मुक्ति का स्वाद भी होता है ।" [42] और " जिन्दगी की यात्रा वही शेष रहती है, जहां हम अपने आपको पा ~~xxxxxx~~ नहीं लेते, बल्कि ढूंढते रहते हैं ।" [43]

जीवन की संपूर्णता की प्रतीति कराने वाले तीन व्यक्ति मिसेज खोसला के जीवन में आते हैं — पी.के., सी.के. और फादर परांजपे । पूरे उपन्यास में बातें करती रहती हैं फादर परांजपे की, लेकिन उपन्यास में वे कहीं भी प्रत्यक्षतः नहीं आते हैं । उनका उपन्यास में वजूद "प्रेजण्ट एवरीव्हेर बट विसिबल नोव्हेर" वाला है । अपने आपको पाने की विफलता में अपने "स्त्रीत्व" की सही पहचान की टोह-ढूंढ में आयी है मिसेज खोसला, जहां बी.के. से उसकी पहचान होती है । कोई होता है जो हमारे बहुत संक्षिप्त-~~xxxxxxxxxxxxxxx~~ से संपर्क में आता है, मगर जीवन-भर के लिए हमें हमारे अधूरेपन से उठाकर, एक संपूर्णता की प्रतीति में बांध देता है ... और कुछ होते हैं, जो हमारे जीवन के सबसे बड़े भागीदार होते हुए, उनके साथ बीते हुए हमें हमेशा यही महसूस होता रहता है कि हम सिर्फ संपर्क में हैं, जीवन में नहीं । और "सिर्फ संपर्कों" में आना और रहना जिन्दगी को रिक्त कर देता है । " [44]

एक स्थान पर मिसेज खोसला बी.के. को कहती है — " मैं यहां आयी ही इस इरादे से थी कि अपने औरत होने का जितना भी अहसास मुझे है, उसे अब आखिरी बार पूरी-पूरी निश्चिंतता में जी सकूं । मैं जान-बूझकर लापरवाही बरतती हूं और मुझे इस बात की अपेक्षा लगातार रहती है कि मेरे शरीर की जद में आकर पुरुषों की आंखों को कुछ देर थम जाना चाहिए । अपने लगभग अधढके जिस्म पर जोंकों की तरह चिपकने वाली नज़रों को बड़े गौर से देखती-बल्कि तकरीबन उलटती-पलटती रहती हूं ।" 45

प्रस्तुत उपन्यास में लेखक ने अरबी-फारसी-उर्दू शब्दों के साथ-साथ कई सार्थक अंग्रेजी शब्दों का प्रयोग भी किया है । लेखक की भाषा पात्र और परिवेश के अनुरूप है । उपमानों के कई नये प्रयोग बरबस हमारा ध्यान आकृष्ट कर जाते हैं । यथा — अजनबीपन : जंगली खरगोश ; मुस्कुराहट : केले के पत्तों पर फैला जल ; मनुष्य की ख्वाहिश : मक्खियाँ ; अँधेरा : गाढ़ा कोलतार ; स्तनः वनकपोत ; जीवनः एक लम्बी मौत ; अंतरात्मा : गुफाओं में गूंजनेवाली प्रतिध्वनियाँ ; एब्नोर्मिलिटी का अँटेंशन : आल्कोहोलिक ड्रिन्क आदि आदि ।[46] भाषागत समृद्धि की मुग्धता में मग्न रहनेवाले पाठकों और भावकों को यह उपन्यास बहुत ही अच्छा लग सकता है ।

﴾4﴿ रामकली :

यह उपन्यास सन् 1978 में सरस्वती-विहार , दरियागंज , नयी दिल्ली से प्रकाशित हुआ था । इसकी पृष्ठभूमि इलाहाबाद की है । गरीबी के कारण रामकली की शादी बसंता नामक एक बूढ़े व्यक्ति से हो जाती है । लेकिन रामकली एक बहुत ही शौकीन-मिजाज अल्हड़ युवती है । अच्छे खाने-पीने-ओढ़ने का उसे शौक है । इसी चक्कर में "रामकली" के जीवन में दो-तीन पुरुष आते हैं । उपन्यास के संदर्भ में स्वयं लेखक का कथन है —

" कहाँ तक जा सकता है किसी रामकली जैसी औरत का स्त्रीत्व और कहाँ तक बसंतलाल की संवेदना का दायरा , इन्हीं दो छोरों पर टिका है उपन्यास का पूरा वितान । सामान्य से सामान्य आदमी के भीतर भी अपनी तरह का एक अपूर्व संसार है , किन्तु दिखता है तभी , जब कोई झांके और खुद का यह संसार भी कहाँ दिखता है , बिना भीतर झांके ही ।"[47]

रामकली अपने ब्याहता पति बसंतलाल – बसंता के

दो-तीन बच्चों की माँ हो जाती है, पर उसके यौवन और सौन्दर्य पर कोई आँच नहीं आती । वैभव-विलासिता की लालसा में बसंता के अलावा दो-तीन पुरुष उसके जीवन में आते हैं, किन्तु प्रत्येक के साथ वह कितनी प्रामाणिक व निष्ठावान है उसकी कहानी है रामकली । ऐसी पुरुष बदलती स्त्री का भी अपना एक विशिष्ट चरित्र है । हिन्दी के प्योरिटियन आलोचकों या पाठकों को यह किंचित् हा× हास्यास्पद भी लग सकता है, किन्तु अनेक पुरुषों द्वारा संभोगित वेश्या अपनी व्यक्तिगत निष्ठाओं में कमल-सी निःस्पृह रहते हुए पवित्र होती है और एक पुरुष द्वारा संभोगित भोगित, पर अपनी मानसिकता में अनेकों से व्यभिचरित स्त्री अपनी नैतिकता में वेश्या से भी बदतर करार दी जा सकती है । इस बीच में दो-एक बार बच्चों से मिलने के लिए वह बसंता के पास भी आती है और रात में देर तक ठहरती है, परंतु बसंता को वह अपने पास भी फटकने नहीं देती क्योंकि अमोलकचन्द को वह धोखा देना नहीं चाहती । उसी प्रकार एक दिन अमोलक जब उसके सपनों पर तुषारापात करते हुए अपने दो-एक व्यावसायिक साथियों को उसके साथ मजा लुटने ले आता है तब वह साफ कह देती है —
"बिना अपनी मरजी के तो मैंने अपने ब्याहते को भी नहीं छूने दिया, तू ससुरा कौन होता है साले ।"[48]

इस प्रकार अमोलकचंद की संपत्ति और उसके वैभव को लात मारते हुए वह भाग खड़ी होती है । यहां उसके द्वारा प्रयुक्त भाषा को लोग सस्ती या बाजारू कह सकते हैं । भले घर की स्त्रियाँ "ससुरा" और "साले" जैसी गालियां नहीं बक सकती, किन्तु व्यक्ति की आत्मिक निष्ठा और नैतिकता में सौन्दर्य को देखने वाले लोग इसकी जरूर सराहना कर सकते हैं । शायद मटियानीजी "तिरिया" का एक तीसरा प्रकार हमारे सामने रखना चाहते हैं ।

यहां पर भी हमें कुछ नये उपमान उपलब्ध होते हैं । यथा— गंगा और जमुना : रूपगर्विता सन्यासिनियां ; घर का दरवाजा: सयानी औरत की आंख ; परिन्दे : धीमी-धीमी सिसकियां आदि आदि ।[49]

संक्षेप में यहां भी हमें पात्रानुरूप , परिवेश-अनुरूप , भावानुरूप सरल , सहज , कहीं अति गंभीर , चिंतनशील भाषा का प्रयोग मिलता है ।

§5§ चन्द औरतों का शहर :

यह उपन्यास सन् 1981 में विभा प्रकाशन , इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था । उसकी पृष्ठभूमि है — अल्मोड़ा शहर । इस शहर की चन्द औरतों के बहाने इसमें मटियानीजी ने समसामयिक सामाजिक-धार्मिक-राजनीतिक समस्याओं को उकेरने का प्रयत्न किया है । इसमें धर्म और विजातीय विवाह के चक्र में फंसे हुए बाबू धरणीधर की द्वन्द्वात्मक मानसिकता का अच्छा चित्रण किया है । धरणीधर मूलतः हिन्दू हैं , ब्राह्मण हैं । उनके एक बीबी और बेटा है । किन्तु मार्था नामक एक सुंदर क्रिश्चियन महिला के प्रेम में वे धर्म-परिवर्तन कर लेते हैं । युवानी के दौर और खुमार के समाप्त होने पर धरणीधर का मन कुटकुटाता रहता है । उनके भीतर का पंडित कुलांचे मारता है । मार्था की लड़की कनिष्ठा के विवाह के समय विजातीय विवाह समस्याओं को लेकर पंडित धरणीधर चिंतित है । वे कहते हैं — "मुझे इस बात का डर है कि कास्ट-प्रोब्लेम जरूर सामने आयेगी । इस छोटे-से और निहायत खूबसूरत शहर के भीतर कोई चीज़ अगर बदसूरती की हद तक फैली है , तो वह है कास्टिजम ।"[50]

यह उपन्यास जिन चंद औरतों का शहर है , ये औरतें हैं — मिस बलवीर उर्फ चारूलता ताबेकर , मिस गोम्स , मिस कनिष्ठा त्रिपाठी , मिसेज दुबे , मिसेज त्रिपाठी , मिसेज मार्था,

बेगम नसरीन उर्फ बेगम तुगलकाबाद । इस तरह उसमें क्रिश्चियन परिवेश भी बहुतायत से है । अतः ईसाई धर्म और उससे जुड़ी हुई धार्मिक शब्दावली के साथ हिन्दू धर्म और उससे जुड़ी हुई संस्कृत-स्स तत्सम शब्दावली , एक तरफ बेगम नसरीन के कारण उर्दू शब्दों की बहुलता है , स्स तो दूसरी तरफ अल्मोड़ा शहर और उसकी वानस्पतिक सुंदरता को वर्णित करने वाली शब्दावली प्रस्तुत उपन्यास में उपलब्ध होती है । इस वर्णन-वैविध्य के कारण यह उपन्यास "भाषा के चन्द प्रयोगों का " भी शहर है ।

" तरु-सागर " , "सलेटी शहर " , "वानस्पतिक-सुंदरता", "स्मृतिजीविता" , "मिथकीय" , "सरसों के गलीचे" , "आत्मजीवी शहर" , आदमजात" , "हसबण्ड कम बोडीगार्ड " , "रंडुवेपन को डिस्ट्रिब्युट करना" , " गेटिंग फ्रूह थ्रू आईज़ " , "कास्टिज्म" , " "प्रेमवंचिता" , "आउटस्पोकननेस " , " मोस्ट स्कैण्डुलस वुमन आफ द सिटी " , प्रत्युत्पन्नता " , "आर्थोडोक्स " , "स्वधर्मे निधनं श्रेय " , " परधर्मो भयावहा " जैसे शब्द उपलब्ध होते हैं । इस उपन्यास के संदर्भ में डा. सलीम वोरा कहते हैं —
"उपन्यास का उत्तरार्द्ध अपनी भाव-सघनता , रागात्मकता , दाम्पत्य-रस , दार्शनिक चिंतन-मनन , करुणता , सहिष्णुता आदि के भावों के कारण आस्वाद्य बन पड़ा है । जैसे "अपने अपने अजनबी" (अज्ञेय) में हमें अस्तित्ववादी दर्शन के कारण एक विशिष्ट प्रकार की शब्दावली मिलती है , उसी प्रकार यहां भी एक विशिष्ट भाव-परिवेश की बहुलता के कारण "क्रिश्चियन वोकेब्युलरी" दृष्टिगोचर होती है । उपन्यास लेखक के दो भिन्न — परस्पर अंतर्विरोधी — मूडों का परिणाम है ।" 51

इस उपन्यास में कुछ नये शब्द उपलब्ध होते हैं । यथा — स्वयंवरा , शराबनोशी , औरतबाजी , टची , स्मृति-जीविता, आत्मजीवी , स्टोन-टी , घंटिका-वादन" , कुशागात , स्वतिष्ठा , डालडाभक्षी , जनक-पालिका (पुत्री) , शांतता , अवज्ञा-आंदोलन ,

मद्यविद्या , धुर-पश्चिम , प्रकृतिदर्शी , सियासतदां , कियनिंग करना , पांव रपटना , इब्तदा फरमाना , शिलीभूत होना ×××××××××××× आवाजाही , दबंगई , खादीवस्त्रम् , आत्मविपन्न, हनीडे , चाक्रवर्त्य आदि आदि । [52]

कुछ नये क्रिया-रूपों का प्रयोग भी हमें यहां मिलता है -- कियनिंग करना , पांव रपटना , इब्तदा फरमाना , एकान्त का निःशब्द बीत जाना , ठोहना , किसी बात का उत्सव हो जाना , शिलीभूत होना , बीतता और बर्फ में होता हुआ आदि-आदि । [53]

कुछ नये मुहावरों का प्रयोग भाषा की दृष्टि से उपन्यास को विशिष्ट बना देता है । यथा -- सूंघती हुई आंखों से देखना , नींद का तिनका-तिनका टूटना , अपने रंडवेपन को डिस्ट्रीब्युट करना , गंगाजली उठा रखना , "सी" काम्पलेक्स की शिकार औरतें (सी कोम्पलेक्स -- किसिंग-विसिंग तक का प्यार) , किसीके गरुड पुराण सुनाने का वक्त आ जाना , हंसते-हंसते तमाशा हो जाना आदि-आदि । 54

इस प्रकार भाषा-शिल्प की नवीनता के कारण यह उपन्यास हमेशा याद किया जाएगा । एक उपन्यासकार या कथाकार का मूल्यांकन इस रूप में भी होना चाहिए कि उसने अपने साहित्य भांडार को किन-किन नये शब्दों से समृद्ध किया । इस मानदण्ड पर भी मटियानीजी खरे उतरते हैं ।

(6) <u>गोपुली गफूरन</u> :

यह उपन्यास सन् 1981 में सरस्वती विहार, शाहदरा से प्रेकाशित हुआ था । इसमें अल्मोड़ा शहर का परिवेश

है और साथ ही कहीं-कहीं आसपास के गांवों का भी चित्रण है। इस दृष्टि से उसे एक मिश्र परिवेश का उपन्यास कह सकते हैं। इस उपन्यास की नायिका गोपुली एक शिल्पकारिन है। उसका पति तांबे के लोटे बनाता है। गोपुली के आकर्षण के कारण उसका व्यवसाय अच्छा चलता है। रामकली" उपन्यास की नायिका रामकली की भांति गोपुली भी एक शौकीन-तबियत औरत है और उसे यह बात भी भली लगती है कि पूरा बाजार उस पर लट्टू है। और सब उससे ~~छ~~ दो-चार बातें करने और कुछ ही समय के लिए सही पर उसका साहचर्य प्राप्त करना चाहते हैं। कोई उसे छू-छा ले तब तक गोपुली भी उसका विरोध नहीं करती है। चुहलबाजियों के लिए, फ्लर्टिंग के लिए, छेड़खानी के लिए गोपुली सबको भाती है, परन्तु उसका पति फौज में भर्ती हो जाता है और बाद में उसके गुमशुदा होने की और मरने तक की खबर आती है। उस समय गोपुली की सहायता के लिए कोई नहीं आता। सब कन्नी काट जाते हैं और गोपुली एक दिन अपने बच्चों के लिए एक मुसलमान के घर जा बैठती है। गोपुली, गोपुली से गोपुली गफूरन हो जाती है।

स्वयं लेखक के शब्दों में गोपुली का " गफूरन होना एक यात्रा है। एक हिन्दू स्त्री से मुसलमान औरत में परिवर्तित होने की यह यात्रा दो संप्रदायों के बीच के अंतराल के आगे की अगर बन सकी है, तो इसलिए कि गोपुली की रचना में निहित मंतव्य ही भिन्न है। एक निहायत सामान्य, आश्रयहीन और जाति-विपन्न औरत गोपुली का गफूरन बनना स्त्री का नदी बनते जाना है, जो सिर्फ आर्द्रा होती है। जाति या संप्रदाय से बड़ा वास्ता गोपुली ~~का गफूरन होना~~ अपने स्त्री होने से है और यही कारण है कि गोपुली का गफूरन होना उसके स्त्री होने को ज्यादा बड़ी जमीन मिल जाना है। रतनराम और सद्दू मियां के बीच

गोपुली की तरह टूटती नहीं , दो घाटियों के बीच की नदी की तरह बहती दिखाई पड़ती है । विवाह उसके स्त्री-जीवन का प्रारंभ था , तो "निकाह" भी शुरूआत ही है — ज्यादा बेहतर और उदात्त नारी — वृत्ति में निष्णात होने की शुरूआत । हिन्दू या मुसलमान नहीं , करूणामयी नारी होना उसका गोपुली होना भी है और गफूरन होना भी । गोपुली का गफूरन बनना उस निमित्त का प्रकट होना है जो प्रकृति अथवा परमात्मा की कल्पना में स्त्री को रचते निहित रहा होगा । गोपुली का गफूरन होना , स्त्री का रचना होना है ।"[55]

भाषा की दृष्टि से सोचें तो उसमें कुछ विशिष्ट शब्द-प्रयोग मिलते हैं , जैसे — औरतखोर आदमी , कटखना कुत्ता , नंगी-सी आँखें , घुटनिया धोती , बतरसिया पंडित , ओघड़ शब्द , अस्तित्वग्रासी पश्चात्ताप आदि-आदि ।[56] उपन्यास में गोल्ल देवता , भूमिया देवता , लोकनाथ देवता आदि लोकदेवताओं का जिक्र जगह-जगह हुआ है ; अतः वहाँ कुमाऊँ बोली के बहुत से शब्द पाए जाते हैं । जहाँ से गोपुली के गफूरन होने का प्रसंग आता है , वहाँ से मुस्लिम-परिवेश के कारण कुछ अरबी-फारसी और उर्दू के शब्द भी पाए जाते हैं । लेखकीय भाषा में एक विशिष्ट प्रकार की ऊंचाई लेखकीय चिंतन के कारण आ पायी है , जिसका एक उदाहरण हम ऊपर देख चुके हैं ।

(7) माया-सरोवर :

लेखक चूंकि एक सर्जक है — कविरेव प्रजापतिः — वह निरंतर अपनी सर्जना में , जीवन्त सृष्टि के निर्माण की ओर अग्रसर होता है । और इस समूची प्रक्रिया में उसकी भूमिका एक प्रयोगशील व्यक्ति की भूमिका रहती है । लेखक सत्य का प्रतिष्ठाता होता है और सत्य को निरंतर प्रयोगों की आवश्यकता रहती है ।

एक लेखक यदि वह सच्चा लेखक है तो वह निरंतर प्रयोगशीलता में रहता है और इसी प्रयोगशीलता के चलते अपनी ही रचनाओं को वह उलटता-पलटता रहता है और तभी कोई "सर्पगंधा" म "नाग-वल्लरी" बन जाता है, तो कोई "पोस्टमैन" या "रमोती" "चिट्ठीरसैन", तो "कोई शरण्य की ओर" का "रामकली" में रूपांतर होता है। यह उपन्यास भी पहले "जलतरंग" के रूप में आ चुका है, परन्तु इसीका कुछ रूपान्तर है — "माया-सरोवर"। प्रकाशकीय वक्तव्य में उसे "जलतरंग" का "परिवर्द्धित" संस्करण कहा गया है।

यह उपन्यास भी भाषा-शैली-शिल्प की दृष्टि से अनोखा है। मटियानीजी की लेखक-यात्रा का एक पड़ाव। लेखकीय वक्तव्य में मटियानीजी इस उपन्यास के संदर्भ में कहते हैं —

" कहां प्रतिबिम्बित होती है किसीकी सम्पूर्ण अस्मिता, फिर चाहे वह श्रीमती खोसला हो कि कोई और ? कभी आप कुछ देर को रुके हैं, किसी झील या सरोवर के किनारे ? झांका है कभी उस धरती की आंख-जैसी डबडबाती जल-विथिका में ? और तब देखा क्या ? जल, जल में की मछलियां और वनस्पतियां — किनारे पर के वृक्षों के साथ अपनी परछाइयां ... दिवस को कुछ और, रात्रि को कुछ और ... कभी, निरभ्र नीला और कभी बादलों से नेपथ्य में अंतर्धान हो गया आकाश ... सैलानियों को स्वयं की प्रदक्षिणा कराती नौकाएं .... अथवा नौकाओं को झील की सैर कराते सैलानी ... अगर आदमी के साथ उसका कोई अतीत हो ... तब न वह जल में सिर्फ उतना ही देखता है, जितना की झील में उसकी अनुपस्थिति में भी मौजूद रहता है — और न थल में। जब देखता है वह अपने बीते ही नहीं, बिताने को शेष रह गये जीवन को भी अपने इर्द-गिर्द के सारे परिवेश और परिदृश्यों की गवाही में ... तब प्रकृति आदमी को आईना हो जाती है। श्रीमती खोसला कहना चाहती हैं इसे — " माया-सरोवर "।

माया सरोवर — जहां फादर परांजपे भी सरोवर के भीतर की एक प्रतिमा के सिवा और कुछ नहीं ।" 57

तो यह है मटियानीजी की भाषा । गहरी झील-सी, नीले आकाश की अनंतता लिए, समुद्र की गहराई लिए, मनुष्य के अंतर के अंतर को थाहती हुई, यहां फुलस्टोप कम हैं, हैं मात्र "डोट ... डोट ..... डोट" । मटियानीजी का कवित्व यहां फूट रहा है । प्रेमचन्द और मटियानी दोनों मानवीय संवेदनाओं के कथाकार हैं, पर प्रेमचंदजी कवि नहीं थे, मटियानीजी कवि भी हैं । निर्मल वर्मा के गद्य में भी आपको ऐसी शैली कहीं-कहीं मिल सकती है, किन्तु निर्मल जहां सीमित संवेदनाओं के कलाकार हैं, वहां शैलेश अपार-असीम संवेदनाओं के कथाकार हैं । शैलेश और जैनेन्द्र में भी एक साम्य है — दोनों अपने चरित्रों को गढ़ने में प्रयोगशील हैं । निरंतर उलटते-पुलटते रहते हैं । पनवाड़ी की तरह, नहीं पलटने से पान सड़ सकते हैं, तो चरित्र भी ।

"माया-सरोवर" की भाषा-पड़ताल के लिए हम निम्नलिखित उदाहरण ले रहे हैं, जिसमें बी.के. और मिसेज खोसला के कथोपकथन हैं —

" मैं काफ़ी शर्मिन्दगी महसूस कर रहा हूं, मिसेज खोसला । मुझे अब यह साफ-साफ महसूस होने लगा है कि मेरा मानसिक स्तर आपके जैसा नहीं है । मैं, शायद, भावुक ज्यादा हूं । मुझमें संतुलन नाम की चीज़, शायद, है ही नहीं " ... " सो आई एम .... " मिसेज खोसला एक पेड़ के तने से टिकती हुई-सी बोलीं, " मगर उस हद तक का असंतुलन मुझे न जाने क्यों गलत लगता है, जहां से संभला नहीं जा सके । तुम समझते होंगे, बी.के., मैं "मोरलिस्ट" बनने का स्वांग भरने की कोशिश करती हूं । यों यह गलतफहमी अगर हो जाए, तो इसे बिलकुल स्वाभाविक

समझूंगी । कोई औरत फिज़ीकली अटैक्ट करने की कोशिश भी करे ; उसका बिहेवियर भी काफी खुलेपन का हो और फिर वही औरत एक साधारण-से किस्म के बर्ताव पर एतराज भी करने लगे — देखा जाए तो यह सब "पैराडौक्स " के अलावा कुछ नहीं । मगर शायद सारी समस्या यहीं पर से शुरू होती है । अपने व्यवहार और चरित्र के तमाम-तमाम विरोधीपन के बावजूद , जिन्हें अपने नैतिक होने का अहसास घेरे रहता है -- एक निहायत अमूर्त किस्म की तकलीफ उनकी जिन्दगी की नियति बन जाती है । ओफ्फोह , मेरी जुबान में न मालूम कितना फालतूपन भर गया है । दो-चार फुल-स्केप बोल जाने पर भी एक छोटी-सी बात कहना चाहती हूं , वह ज्यों की त्यों "चुइंगम" की तरह तलवे से चिपकी हुई-सी महसूस होती है । तुम्हें बहुत ज्यादा बोरियत तो महसूस नहीं होने लगी है , बी.के. ?" [58]

और उसके बाद की यह लेखकीय टिप्पणी —" जिसे कभी आकर्षक देह , आभिजात्यपूर्ण स्वभाव और अपरिचय के बावजूद परिचितता की विलक्षणता से कौंधती हुई आँखोंवाली महिला से एकान्त वार्तालाप का अवसर न मिला हो , उसके लिए इस बात की कल्पना करना कठिन होगा कि मनुष्य के प्रेम में प्रकृति की साझेदारी कितनी अभिन्न होती है ।" [59]

यहाँ अरबी-फारसी-उर्दू - अंग्रेजी - संस्कृत शब्द बहुतायत से आये हैं , पर मटियानीजी की भाषा की यह खूबी है कि कहीं भी , ज़रा-सी भी , असहजता या अस्वाभाविकता का आभास तक नहीं होता है ।

और देखिए उपन्यास में बहुचर्चित "प्रेजण्ट एवरीव्हेर बट विसिबल नोव्हेर " वाले फादर परांजपे के वक्तव्य का एक उदाहरण :--

"फादर परांजपे दूसरे ही क्षण अपनी बर्फ जैसी सफेदी में थे, और उन्होंने कहा था — " सोम , जिसने अपनी सुंदरता और अपने स्वभाव में रहने के जोखिम नहीं उठाए हों, इसके आनंद को नहीं जाना हो, उसे समझा सकना कठिन है। शरीर उनके लिए बाधा बनता है, जो शक्ति में रहना चाहते हैं। जो साधना में रहना चाहते हैं और रहना आत्मा के सनातन सौन्दर्य में — उनके लिए शरीर फूल की तरह खिलता है और फूल की तरह ही झरता है।" 60

जहां तक उसके भाषिक शिल्प और रचाव की बात है, क्या "नोट" करें या क्या "नोट" न करें, वाली मनस्थितियों से गुजरना पड़ता है। फिर भी कुछ उदाहरणों को नोट किए बिना मन मानता नहीं है। यथा —

" पक्षी-युग्म का उड़ान भरना मानो अपनी खुद की कल्पना को आकार लेते हुए देखना, वर्जित किस्म का स्वाद, किसी स्त्री की आवाज़ में अभी भी अविवाहिता स्त्रियों की-सी ताजगी होना, जिस्मानी खुलापन, कन्विंसिंग, फ्लर्ट की तरह बोलना, फीमेल टाइप आदमी, हद दरजे की बातूनी औरत का इम्प्रेशन, किसीके संसर्ग में अन्य पुरुष की विद्यमानता रहना, बैंजनीपन, जेट ब्लेक तिल, होट ड्रिंक्स का प्रपोजल, समर-फेस्टीवल, दर्पण की-सी पारदर्शिता उजागर करने वाला चेहरा, अण्डर-एस्टीमेटिंग, शापग्रस्त अप्सरा, किसीका संक्षिप्त होना, टिटबिट्स, कन्फेस करना, ट्रेजिक मूड, बटरिंग करना, सैटिल्ड लाइफ, क्रूसीफाइड होना, अमूर्त कोमलता, पिण्डारी ग्लेशियर्स की डिटेल्स, काम्प्ली-केटेड, नानसीरियस, फस्ट्रेशन, सेंटीमेंटल, हैबीच्युअल, चीयर्स फोर लोंग लाइफ, यूटापियन अतीत, इंटरेस्टेड, सर्वग्रासी सघन कोहरा, हैबियस-कार्पस, आदि-आदि।" 61

§8§ बर्फ गिर चुकने के बाद :

यह उपन्यास सन् 1975 में परिमल प्रकाशन , इलाहाबाद से प्रकाशित हुआ था । उपन्यास का नायक रवि नामक युवक है , जो किसी फिल्म की शूटिंग के लिए किसी पहाड़ी शहर को गया है । उपन्यास में अनेक स्थानों पर "बोलिवुड" की चर्चा है । वहां पहाड़ पर रवि को पूर्व-जीवन की प्रेमिका मिलती है । उपन्यास की कोई बंधी-बंधायी कथा है , किन्तु ऐसा प्रतीत होता है कि कथा-नायक प्रेम-वंचना का शिकार है ।

उपन्यास प्रयोगधर्मा है और एक विशिष्ट रुचि वाले पाठकों के लिए वह पठनीय हो सकता है । उपन्यास में कथा ढूंढने वालों को निराशा ही हाथ लग सकती है । ऐसे पाठक इसे सात-आठ पृष्ठों से ज्यादा नहीं पढ़ सकते । उपन्यास की भूमिका "आरंभ में " में लेखक स्वयं इसके बारे में बताते हैं —

" "बर्फ गिर चुकने के बाद " मेरे अब तक के लेखन में किंचित भिन्न , और संभवतः , इसी कारण से कठिन किस्म की कोशिश है । स्पष्ट है कि रचना कर सकने की कोशिश और कठिनता , लेखक तक ही सीमित न रहकर , प्रकाशित कृति का रूप धारण कर ले , तो वह प्रत्येक के लिए , नहीं होगी । न सिर्फ भाषा और सम्प्रेषण , बल्कि कथ्य और संवेदन की दृष्टि से भी । लिख सकने के अभ्यास का किसी रचना में उपस्थित रहना , इसलिए उसकी विफलता का प्रमाण बन जाता है ।"[62]

यदि औपन्यासिक रूपबंध की दृष्टि से सोचें तो इसे "एण्टी नावेल " या "एब्सर्ड नावेल " की कोटि में रख सकते हैं । उपन्यास भी "कविता" हो सकता है , इस अनुभव से रू-ब-रू होना हो , तो उनके लिए यह उपन्यास है ।

स्त्री-वंचना और प्रेम-वंचना की कितनी और कैसी स्थितियां और अभिव्यक्तियां हो सकती हैं, उसकी तमाम संभावनाओं को यहां कलात्मक ढंग से संवारा गया है। कथा-नायक को उसकी पूर्व-प्रेमिका मिल जाती है। उसके साथ उसका छोटा-सा बच्चा भी है। वह नायक से पूछती है — " क्यों, पहचान नहीं पा रहे हो ? " इस एक वाक्य की असंख्य और अकल्पनीय प्रतिक्रियाएं यहां अभिव्यंजित हुई हैं।

मैं यदि अपनी बात करूं तो यह उपन्यास, मुझे उसकी भाषा और केवल भाषा के कारण ही अच्छा लगा है। इस दृष्टि से मैं उसे मटियानीजी का श्रेष्ठ उपन्यास कह सकता हूं। अतः यहां कुछ परिच्छेद उसकी भाषा-शक्ति को गुनने के इरादे से दे रहा हूं —

§1§ अपनी दयनीयता को सहना, विश्वास कीजिए, अपने प्रति क्रूर और अमानवीय होना है। जब बेहूदगी को कला समझने वाले लोग आपको बताते हैं कि सुंदरता कहां है, और आप में यह साहस खत्म हो चुका है कि आप बता सकें ... आप बता सकें कि सुंदरता सिर्फ नंगे जिस्मों में ही नहीं, प्रकृति में भी होती है। आप बता सकें कि जब जंगल में सुबह की शुरूआत होती है और अनंत प्रकार के पक्षी चहचहाना शुरू करते हैं और शिंजनी नदी का जल ढलान की तरफ जलतरंग की बजता हुआ बहता है और श्रुति में बदल जाता है। जब अरण्य स्नान-निवृत्त तपस्वियों की-सी पवित्रता में होता है और हवा ~~वृक्षों~~ वृक्षों से अप्सराओं की तरह लिपटती है। जब धूप हिमालय की बर्फीली चोटियों पर पीले चीवरों की तरह उतरती है और घाटियां गहरी नींद में विवस्त्र हो गई सुंदरियों की-सी अचानकता में से जागती हैं। ... लेकिन नहीं, आप हीरो किरनकुमार या डायरेक्टर खोसला को — या इस तरह के किन्हीं भी लोगों को, जो कला-शून्यता से ग्रस्त हैं — कुछ नहीं

बता सकते । आपने यह कहावत तो सुनी ही होगी कि कसाई की आंख भेड़ की ऊन पर नहीं , उसके गोश्त पर रहती है । .... औरत को जब भी इरादतन विवस्त्र किया जाता है , आप स्वयं अनुभव करते होंगे कि प्रकृति के सारे सौन्दर्य पर से आपको आंखों का देखना समाप्त हो जाता है और सिर्फ एक बाजारू औरत का नंगापन आपकी चेतना को चांपना शुरू कर देता है । ... कितना विचित्र है कि यह सब कि अब आप इस वक्त — एक अंतराल के साथ ही सही , देवदारु-भरी द्रोणियों में प्रकृति को देखें और अनुभव करें कि यह प्रत्येक के लिए है । किन्तु स्त्री का प्रत्येक के लिए होना — अपनी सम्पूर्ण सदाशयता के बावजूद आपके लिए यह कितना दुसह हो सकता है ? दुसह और कलाशून्य ।" 63

§2§ अब अगर मैं आपको एकाएक यह बताने की कोशिश करूं कि शारदा के बायें स्तन पर सलेटी रंग के तिल थे और उन पर निहायत भूरे रोयें उगे हुए थे , तो आप इस बात पर ठठाकर हंस पड़ना चाहेंगे और इतमीनान से कह सकेंगे के " हम तो पहले ही समझ गए थे कि यह निहायत "परवर्टेड " किस्म का आदमी है । " ... और अगर मैं इसी क्षण यह भी बताना चाहूं कि " जब मां का शवदाह हो रहा था , मैं बिजली की-सी कौंध की तरह इस स्मृति से भर गया था कि कभी मैं एक अबोध शिशु की-सी निर्द्वन्द्वता में इन्हीं क्षार होते हुए स्तनों में रहा होऊंगा । और जब तक मैं अपनी इस स्मृति में रहा , एक दुर्दान्त मृत्यु-गंध में डूबा रहा । " ... तो यह एक मृत्यु की दहशत से "आब्सेस्ड" व्यक्ति की ~~खिन्न~~ विद्रूपता लग सकती है ।" 64

§3§ " परमात्मा , जब मैं उसके साथ था प्रेम में , तभी प्रार्थना में भी हुआ । ... और जब मैं प्रार्थना में हुआ , तभी मैंने

देखा कि मेरे शरीर में असंख्य रंगों वाले पंख उग रहे हैं । मैं, लम्बी तथा ऊंची उड़ान भरने से पहले चहचहाते हुए पक्षियों के साथ, अपनी प्रेमिका के शरीर पर से आकाश की यात्रा पर चल पड़ा हूं और मैंने देखा है और चमत्कृत हुआ हूं । ... मैं प्रेम से प्रार्थना और प्रार्थना से ऊंचाइयों पर गया हूं और मैंने उसे देखा है । देखा है, और चमत्कृत हुआ हूं कि वह जितनी सिर्फ मेरे लिए थी, उतनी ही सबके लिए हुई । प्रत्येक के लिए, उस प्रकृति की तरह, जो वर्षा हो चुकने या बर्फ गिर चुकने के बाद की अलौकिकता में होती है । सचमुच, परमपिता, यह कितना बड़ा चमत्कार था कि जब मैं प्रेमिका क्रि को उसकी सम्पूर्णता में देख सकने जितनी ऊंचाइयों पर उड़ रहा था, तो मैंने देखा कि योरोप के समस्त प्रार्थना-गृहों में लोग, — स्त्री और पुरुष, वृद्ध और बच्चे — सामूहिक रूप से मेरे लिए प्रार्थना कर रहे हैं कि — हे परमपिता, इस स्त्रीवंचना की जगह, बर्फ गिर चुकने के बाद की प्रशांतता देना ।" 65

इस तरह लिखने बैठें तो पूरा उपन्यास लिखना पड़े । मटियानीजी की भाषा को देखना-समझना बड़ा मुश्किल काम है । कहां कोई देख पाता है अपने आप को, अपने भीतर को, कहां कोई भर पाता है सागर को अपनी आंखों में, कहां कोई देख पाता है अनंत आकाश की नीलिमा के उस छोर को, क्या मन सकxxx× भर सकता है आपका डूबते सूर्य को देखने से कि कैसे कोई दर्द के दरिया में गोता लगा सकता है । फिर भी कुछेक सूक्तियों को उद्धृत करने का मन हो रहा है —

§1§ सांप अपनी मणि को भूल सकता है, लेकिन मनुष्य अपने प्रेम को नहीं ।

§2§ इसलिए प्रेम को — अथवा कह लीजिए कि स्त्री को भी — सिर्फ बुद्धि के बूते पर समझने की कोशिश करना अक्सर या तो

घातक और या नितान्त विफल सिद्ध होता है । कदाचित् कभी आप रहे हों — या भविष्य में हों — प्रेम के आरंभ या अन्त की अचानकता से विह्वल अथवा आक्रान्त , तब आप इतना जरूर महसूस करेंगे कि गूंगा अपनी विह्वलता अथवा आक्रान्तता — दोनों में सिर्फ अपने शरीर में होता है , जब कि प्रेम एक ऐसा शब्द है , जो सिर्फ शरीर में अंटता नहीं है ।

§3§ लेकिन जब आप इसे §भाषा को§ सिर्फ अपने-आपको समझने और अपने-आपके लिए प्रयोग करने के लिए पाना चाहते हैं , यह आपको गूंगे की जिह्वा की तरह असहाय और असमर्थ कर देती है ।

§4§ किसी भी तरह जल्द-से-जल्द कीचड़ को पार कर जाने की त्वरा को आप कभी बरत चुके हैं , तो कुढ़न और घृणा में लिथड़ती हुई अपनी भाषा को पार करने की त्वरा को बरतने की बात भी आप समझेंगे । जैसा कि मैं पहले भी कह चुका हूं , भाषा सापेक्ष चीज़ है और इसका पानी की तरह अपना कोई रंग नहीं है , जो आपके भीतर है , वही भाषा में होगा ।

§5§ एक अनंत और प्रशांत धैर्य के बिना प्रेम संभव नहीं है ।

§6§ नफरत और निष्कर्षों की जल्दबाजी , आप खुद महसूस करेंगे , आदमी को सिर्फ अंधापन बख्शती है ।

§7§ हालांकि आप भी इसे बखूबी जानते होंगे कि बड़प्पन दिखाने की जरूरत ही अपने छोटेपन में से महसूस होती है और दर्शक के अदृश्य होते ही आदमी और ज्यादा छोटा पड़ जाता है ।

§8§ स्त्री जब मां होती है , तब उसमें सतर्कता होती ही नहीं और पत्नी होती है , तो एक निहायत औपचारिक किस्म की सावधानी ।

§9§ जब विश्वास सिर्फ अपने तक ही सीमित हो जाता है, तो वह विभ्रम बन जाता है और विभ्रम जितना पुराना होता जाता है, आपको वायु-विकार से जकड़ता जाता है और वायु-विकार ऊंचाइयों पर जाते वक्त हमेशा बाधा डालता है ।

§10§ यह एक सनातन वास्तविकता है कि कल्पना और प्रार्थना प्रेम के निकट भी तभी ले जाती हैं, जब ये दूसरों के लिये की गई हों ।

§11§ स्त्री के और आपके बीच का अंतराल जितना गहरा और व्यापक होगा, उतना ही आपके प्रेम को भाषा और कला और संगीत के स्तर पर प्रतिबिम्बित तथा प्रतिध्वनित कर सकने की संभावनाओं से भरा हुआ । § तुलनीय : इलियट का कथन : धेर इज़ ऑल्वेज़ ए सेपरेशन बिटविन द मैन हू सफर्स एण्ड द आर्टिस्ट हू क्रिएट्स एण्ड द ग्रेटेस्ट द सेपरेशन, द ग्रेटर द आर्टिस्ट . §

§12§ प्रेमविहीन स्त्री और भैंस में कोई बहुत बुनियादी अंतर नहीं होता ।

§13§ मैं यह दोहराना चाहूंगा कि भाषा किसीको भी बख्शती नहीं है और अपनी कामुकता, कुटिलता, क्रूरता, कायरता, कंचनता और काषायता या कि करुणा अथवा कला में से जितनी छूट या मुक्ति अपने लिए आप लेते हैं, उतनी ही यह दूसरों को भी देती है । उदाहरण के तौर पर " लक्ष्मी सहाय जी " की छूट लेते ही, मैं खुद सरस्वती सहाय बन गया हूं ।

§14§ स्त्री और मृत्यु , इन दोनों को भाषा में बांधना सचमुच कठिन है । जब ये हमारे अस्तित्व पर हावी होती है , सबसे पहले हमारी भाषा को लीलती है ।

§15§ आदमी भी सिर्फ कद से नहीं , बल्कि स्त्रीवंचना या कलावंचना के पंच ककारों से गुजर कर , छठे छठे और फिर सातवें और फिर आठवें ककार की ऊंचाई पर पहुंचने के बाद होता है । § याद कीजिए मटियानीजी के आठ ककार : कामुकता , कुटिलता , क्रूरता, कायरता , कंचनता , काषायता , करुणता और कला । § 66

संक्षेप में मटियानीजी की भाषा का पार पाना बड़ा ही कठिन है । सिर्फ उसके संदर्भ में निम्नलिखित पंक्तियों में कुछ कहा जाए तो कह सकते हैं —

" तो वह भाषा
जनमती है भीतर से
कल्पना , के संवेदना और संभावना की सीमा तोड़कर
कारुणिक पवित्रता में
सीपी में मौक्तिक-सी बैठ जाती है
जिसे लाता है कोई मरजीवा
भाषा को ,
इस भाषा को पाना
इतना कठिन है
जितना क कि शायद ईश्वर को पाना है । " 67

निष्कर्ष :

अध्याय के समग्रावलोकन के पश्चात् हम निम्नलिखित निष्कर्षों तक पहुंच सकते हैं —

§1§ नगरीय परिवेश की भाषा के अध्ययन से हमें दो ~~प्रकxxx~~× प्रकार के परिवेश मिलते है — §अ§ बम्बइया परिवेश और §2§ अन्य नगरीय परिवेश ।

§2§ बम्बइया परिवेश की भाषा मुख्यतया तीन उपन्यासों में मिलती है — बोरीवली से बोरीबन्दर तक, किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई ।

§3§ बम्बइया परिवेश की भाषा में हमें मुख्यतः भाषा के तीन स्तर मिलते हैं -- 1. बम्बइया भाषा जिसमें अरबी-फारसी - हिन्दी, गुजराती, मराठी, बंगला, पंजाबी, ~~xxx~~× मद्रासी §दक्षिण भारतीय भाषाएं § आदि कई भाषा के शब्द मिलते हैं और उस भाषा पर स्वयं मटियानीजी ने भी प्रकाश डाला है । 2. बम्बई के दादाओं, उस्तादों, उनके चेले-चपाटी तथा मवालियों की भाषा, जिसे आजकल "टपोरी-लैंग्वेज" कहा जाता है । 3. लेखकीय भाषा ।

§4§ अन्य नगरीय परिवेशों में दिल्ली, इलाहाबाद, अल्मोड़ा, नैनिताल आदि शहरों का परिवेश उपलब्ध होता है । ऐसे उपन्यासों में "छोटे छोटे पक्षी", "आकाश कितना अनंत है", "जलतरंग", "रामकली", "चन्द औरतों का शहर", "गोपुली गफूरन", "माया सरोवर", "बर्फ गिर चुकने के बाद" आदि उपन्यास मुख्य हैं । इन उपन्यासों में परिवेशानुरूप भाषा तो उपलब्ध होती ही है, जिसमें आवश्यकतानुसार अरबी, फारसी, उर्दू, संस्कृत भाषा के शब्द आये हैं ; कहीं-कहीं जैसे "गोपुली गफूरन" में कुमाऊंनी के भी कुछ शब्द उपलब्ध होते हैं ।

§5§ इन उपन्यासों में कमजकम पांच उपन्यास ऐसे हैं जिनका भाषिक-शिल्प एक विशिष्ट रूचि के पाठकों को आकर्षित कर सकता है । ये उपन्यास हैं — "आकाश कितना अनंत है", "जलतरंग", "माया सरोवर", "चन्द औरतों का शहर" और "बर्फ गिर चुकने के बाद" । मटियानीजी का काव्यत्व यहां

छलकता है । कोई लेखक भाषा के संदर्भ में भी कितनी ऊंचाइयों तक जा सकता है, इसके उदाहरण हैं ये उपन्यास जो साबित करते हैं कि मटियानीजी के पास प्रेमचंद-रेणु-नागार्जुन की संवेदना तो है ही, निर्मल वर्मा, जैनेन्द्र और अज्ञेय की भाषा भी है । बल्कि कहीं-कहीं ये इनसे भी आगे निकल जाते हैं ।

§6§ इन उपन्यासों का भाषिक-सौन्दर्य — नयी सूक्तियों, नयी कहावतों, नये मुहावरे, नये उपमान, नये विशेषण, नये क्रिया-रूप — पाठकों को आकर्षित कर सकता है ।

===== xxxxxx =======

:: सन्दर्भानुक्रम ::

§1§ बोरीवली से बोरीबन्दर तक : पृ. 29-30 ।

§2§ वही : पृ. 31 ।

§3§ वही : पृ. 31 ।

§4§ द्रष्टव्य : समीक्षायण : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 115 ।

§5§ बोरीवली से बोरीबन्दर तक : पृष्ठ 29 ।

§6§ वही : पृ. 32-33 ।

§7§ वही : पृ. 46-47 ।

§8§ वही : पृ. 64 ।

§9§ वही : पृष्ठ 65 ।

§10§ वही : पृ. 128 ।

§11§ वही : पृ. 148 ।

§12§ वही : पृ. 121 ।

§13§ किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई : आमुख से ।

§14§ वही : आमुख से ।

§15§ वही : पृ. 7 ।

§16§ वही : पृ. 9 ।

§17§ वही : पृ. 10 ।

§18§ वही : पृ. 11 ।

§19§ वही : पृ. 12 ।

§20§ वही : पृ. 30 ।

§21§ गुजरात और महाराष्ट्र राज्य की स्थापना के पूर्व उसे "मुंबई राज्य " ही कहा जाता था ।

§22§ किस्सा नर्मदाबेन गंगूबाई : पृ. 59 ।

§23§ वही : पृ. 76-77 ।

§24§ वही : पृ. 97-100 ।

§25§ दो शब्द : कबूतरखाना ।

§26§ हिन्दी के बहुचर्चित उपन्यास और उपन्यासकार : डा. अमर जायसवाल : पृ. 94 ।

§27§ कबूतरखाना : पृ. 107 ।

§28§ वही : पृ. 27-28 ।

§29§ वही : संपादकीय ।

§30§ वही : पृ. 46-47 ।

§31§ द्रष्टव्य : इसी प्रबंध में पृष्ठ संख्या - 186 ।

§32§ छोटे छोटे पक्षी : पृ. 7-8 ।

§33§ वही : पृ. क्रमशः 11, 12, 125, 138, 142, 176, 185, 243, 263, 272 ।

§34§ लेख : लेखक बन सकने का आकांक्षी : डा. बटरोही : पहाड़ — पत्रिका-विशेषांक : पृ. 203 ।

§35§ देखिए : शैलेश मटियानी के आंचलिक उपन्यास : डा. प्रेमकुमारी सिंह : पृ. 28 ।

§36§ उपन्यास के नये संस्करण के फ्लेप पर दिया गया वक्तव्य ।

§37§ आकाश कितना अनंत है : पृ. 250 ।

§38§ वही : पृ. 281 ।

§39§ वही :xमृxx पृ. 279 ।

§40§ वही : पृ. 226 ।

§41§ वही : पृ. क्रमशः 17, 91, 93, 120, 168, 211, 212, 222, 227।

§42§ जलतरंग : पृ. 37 ।

§43§ वही : पृ. 24 ।

§44§ वही : पृ. 36 ।

§45§ वही : पृ. 16 ।

§46§ वही : पृ. क्रमशः 8, 11, 23, 31, 49, 56, 64, 74 ।

§47§ लेखकीय वक्तव्य : रामकली ।

§48§ रामकली : पृ. 83 ।

§49§ वही : पृ. क्रमशः 30, 38, 63 ।

§50§ चंद औरतों का शहर : पृ. 23 ।

§51§ शैलेश मटियानी का कथा-साहित्य : शोध-प्रबंध : पृ. 87 ।

§52§ चन्द औरतों का शहर : पृ. क्रमशः 10, 28, 30, 43, 64, 74, 82, 87, 94, 96, 99, 103, 104, 113, 114, 118, 161, 75, 85, 110, 178, 165, 168, 186, 187, 201, 202, 271 ।

§53§ वही : पृ. क्रमशः 75, 83, 110, 125, 174, 169, 178, 234 ।

§54§ वही : पृ. क्रमशः 10, 26, 29, 31, 43, 43, 161 ।

§55§ लेखकीय वक्तव्य : गोपुली गफूरन ।

§56§ वही : पृ. क्रमशः 18, 38, 106, 107, 108, 113, 117 ।

§57§ लेखकीय वक्तव्य : माया सरोवर : प्रथम फ्लैप से ।

§58§ वही : पृ. 59 ।

§59§ वही : पृ. 59-60 ।

§60§ वही : पृ. 36 ।

§61§ वही : पृ. क्रमशः 11, 13, 20, 28, 28, 28, 31, 33, 47, 47, 47, 48, 51, 63, 66, 74, 101, 108, 110, 114, 115, 116, 117, 130, 131, 139, 139, 140, 141, 141, 146, 147, 149, 150, 151 ।

§62§ भूमिका : बर्फ गिर चुकने के बाद : ।

§63§ से §65§ : वही : पृ. क्रमशः 22-23, 26, 70 ।

§66§ वही : पृ. क्रमशः 27, 32, 32, 39, 43, 43, 50, 61, 68, 73, 85, 87, 98, 110, 117 ।

§67§ सूखे सेमल के वृन्तों पर : काव्य-संग्रह : डा. पारूकान्त देसाई : पृ. 33 ।

§§§§§§§§§§§§